महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६३ **अंक** : १७
दयानन्दाब्दः १९७
विक्रम संवत्: भाद्रपद कृष्ण २०७८
कलि संवत्: ५१२२
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२२

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

सितम्बर प्रथम २०२१

अनुक्रम

०१. हिन्दी के विकास में महर्षि...	सम्पादकीय	०४
०२. अग्नि सूक्त-११	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. आर्यजगत् के समाचार		०९
०४. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०५. योगीराज श्रीकृष्ण की उपासना विधि	बिहारीलाल शास्त्री	१५
०६. शङ्का समाधान-६०	डॉ. वेदपाल	१६
०७. उड़ियो पंख पसार	कन्हैयालाल आर्य	१८
०८. दार्शनिक दयानन्द!	डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी	२०
०९. हिन्दी किसी बैसाखी की मुँहताज...	डॉ. प्रभु चौधरी	२४
१०. महर्षि जन्मतिथि-??	डॉ. वेदपाल	२६
११. भारत में सारा कार्य भारतीय...	डॉ. जगदेव विद्यालङ्कार	२७
१२. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३०
१३. संस्था की ओर से...		३१
१४. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

हिन्दी के विकास में महर्षि दयानन्द का उल्लेखनीय योगदान

महर्षि दयानन्द एक समाजसुधारक के रूप में कार्यक्षेत्रीय मञ्च पर अवतीर्ण हुए। हिन्दी भाषा का विकास करना भी उनका एक प्रमुख उद्देश्य था। हिन्दी के प्रति महर्षि दयानन्द की अटूट निष्ठा, राजप्रासादों में उसे उचित स्थान दिलाना, राजाओं और राजपरिवारों को हिन्दी अध्ययन के लिए प्रेरणा देना, आर्यसमाज में हिन्दी के प्रयोग की अनिवार्यता, हिन्दी के दूरगामी भविष्य का निर्माण, साहित्यिक-समृद्धि आदि इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इससे भी बढ़कर उन्होंने राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का स्वप्न देखा था। यह उनका दूरदर्शी राष्ट्रवादी चिन्तन था। श्री पी.के. केशवन नायर के शब्दों में- ''आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ही महात्मा गांधी जी के पूर्व आसेतु हिमाचल की भारतीय जनता को एक राष्ट्रभाषा के सूत्र में बाँधने का स्वप्न देखा था। ('हिन्दी प्रचारक', १९३९-सत्यदेव स्वामी)'' स्वामी जी मूलतः गुजराती थे, नए सिरे से हिन्दी सीखकर हिन्दी का विकास करना और उसे राष्ट्रभाषा और देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि बनाने का प्रयास करना निश्चय ही उनका अधिक स्तुत्य कार्य था। वे ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने ''सबसे पहले अपनी मातृभाषा को एक तरफ रखकर देश की राष्ट्रभाषा का आलिंगन किया और अपने धार्मिक ग्रन्थ राष्ट्रभाषा में लिखे। यहीं से हिन्दी का दिव्य सन्देश प्रारम्भ हुआ।'' ('दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास'-पृ. २३१) उन्होंने आर्यसमाज के माध्यम से जिस विस्तृत हिन्दी जगत् का निर्माण किया वह अन्य किसी संस्था द्वारा सम्भव नहीं हो पाया है। उद्देश्यपूर्ति में व्यक्तिगत व सामाजिक बाधाओं को झेलते हुए भी स्वामी जी ने प्रचार, प्रेरणा, साहित्य, शास्त्रार्थ, व्याख्यान, विज्ञापन एवं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी-प्रसार-योजना को क्रियान्वित रखा। स्वामी दयानन्द के प्रयासों का मूल्यांकन करने के लिए हम उन्हें निम्न प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं-

आर्यसमाज की स्थापना और हिन्दी की अनिवार्यता

स्वामी दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार, प्रचार एवं प्रसार में ही बीता। उनकी समस्त योजनाएं और क्रियाकलाप एतदनुरूप ही थे। प्राचीन संस्कृति की जीवन्तता के लिए, देश की एकता के लिए यह आवश्यक था कि देश की कोई एक सम्पर्क भाषा हो। उसके लिए स्वामी दयानन्द ने हिन्दी को ही चुना, क्योंकि भारतीय संस्कृति की सांमजस्यात्मकता के निकट यही भाषा थी और भारत में सर्वाधिक यही भाषा बोली तथा समझी जाती थी। विदेशी भाषा और साहित्य का बहिष्कार भी तभी सम्भव था, जब देश की कोई अपनी भाषा हो, उसकी समृद्धता के साथ-साथ जिसमें उपयोगी साहित्य भी उपलब्ध हो सके। इसके लिए एकमात्र हिन्दी ही उपयुक्त ठहरती थी। अतः स्वामी जी ने हिन्दी को ही 'आर्यभाषा', कहकर उसे बढ़ाने के प्रयास किए। उनमें प्रथम प्रयास आर्यसमाज में अनिवार्यरूपेण हिन्दी को लागू करना था- ''स्वामी जी ने संवत् १९३२ में आर्यसमाज की स्थापना की और सब आर्यसमाजियों के लिए हिन्दी या आर्यभाषा पढ़ना अनिवार्य ठहराया। युक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलों और पंजाब में आर्यसमाज के प्रभाव से हिन्दी गद्य का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ। पंजाबी बोली में लिखित साहित्य न होने से और मुसलमानों के बहुत अधिक संघर्ष से पंजाबवालों की लिखने पढ़ने की भाषा उर्दू हो रही थी। आज तो पंजाब में हिन्दी की पूरी चर्चा सुनाई देती है, यह इन्हीं (स्वामी दयानन्द) की बदौलत है।'' ('हिन्दी साहित्य का इतिहास'-रामचन्द्र शुक्ल, पृ. ४२४) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- ''पंजाब उन दिनों उर्दू का गढ़ था, वहाँ हिन्दी की स्थिति बहुत ही नाजुक थी। स्वामी दयानन्द और उनके शिष्यों ने उस प्रान्त में हिन्दी और संस्कृत को नवजीवन दिया।'' ('हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास'-पृ. २५४) ''आर्यसमाज की स्थापना से हिन्दी गद्य के प्रचार में बहुत सहायता पहुँची, उर्दू की स्पर्धा में हिन्दी प्रचलित हुई। दयानन्द ने आर्यभाषा तथा आर्य-संस्कृति के प्रचार के लिए देश-देशान्तरों में

आर्यसमाज की शाखाएँ स्थापित कीं।'' ('हिन्दी गद्य का वैभवकाल', डॉ. माधुरी दुबे, पृ. ३१)

आर्यसमाज की स्थापना का उद्देश्य समाजसुधार आन्दोलन को तीव्र करना एवं अन्य योजनाओं की पूर्ति के साथ-साथ उसे स्थायित्व प्रदान करना था। आर्यसमाज को व्यवस्थित एवं सुचारू रूप से चलाने के लिए स्वामी जी ने कुछ नियम बनाए थे। जिनमें पाँचवाँ नियम हिन्दी ग्रन्थों की अनिवार्यता के लिए था-

''प्रधान समाज में वेदोक्तानुकूल संस्कृत और आर्यभाषा में नाना प्रकार के सदुपदेश की पुस्तकें होंगी और एक 'आर्य-प्रकाश' पत्र (हिन्दी माध्यम) यथानुकूल आठ-आठ दिन में निकलेगा। वह सब समाजों में प्रवृत्त किए जाएंगे।''

लाहौर में निर्मित उपनियमों में तो उन्होंने स्पष्ट आदेश दिया है- ''सब आर्य और आर्य सभासदों को संस्कृत व आर्यभाषा जाननी चाहिए।'' (उपनियम संख्या ३५)

इसी प्रकार भाषणों में तथा सत्यार्थप्रकाश आदि रचनाओं में भी अनेक स्थानों पर स्वामी जी ने आर्यसमाजियों को हिन्दी पढ़ने की प्रेरणा दी है। आर्यसमाज के माध्यम से किए गए हिन्दी कार्यों पर 'स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास' नामक पुस्तक में प्रकाश डालते हुए बताया है- ''अहिन्दी भाषी प्रान्तों में भी हिन्दी थोड़ी बहुत समझी और बोली जाती थी। इसलिए आर्यसमाज ने ये सिद्धान्त बनाए-

१. उसके प्रचारकों तथा अनुयायियों को हिन्दी में बोलना और लिखना चाहिए।

२. प्रचार का समस्त कार्य हिन्दी के प्रकाशनों द्वारा करना चाहिए।

३. शिक्षा-स्थानों में हिन्दी को उचित स्थान दिलवाना चाहिए।

आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द ने अपने निजी उदाहरण से अपने अहिन्दी भाषी अनुयायियों को भी हिन्दी का प्रयोग करने की प्रेरणा दी। वह स्वयं गुजराती थे। उन्होंने हिन्दी सीखी और केवल उसे ही अपने व्याख्यानों तथा लेखनी का माध्यम बनाया। उनका उद्देश्य आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार करना था, परन्तु उनके तथा उनके अनुयायियों के धर्मप्रचार से जो अधिक उत्तम चीज राष्ट्रीय जीवन को प्राप्त हुई, वह थी- राष्ट्रीय भाषा का प्रचार।'' (महर्षि दयानन्द जीवन-चरित (प्रथम भाग)-देवेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ. ३३२, ५७१) स्वामी दयानन्द के आन्दोलन का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि ''जिस भाषा-शैली को संयत एवं सुघड़ बनाने के लिए सैकड़ों वर्षों की आवश्यकता होती, वह इस आन्दोलन के उथल-पुथल में अविलम्ब सुधर गई।'' (हिन्दी गद्यशैली का विकास : जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पृ. ६०)

आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् प्रतिक्रिया अथवा स्वतन्त्र रूप में अन्य धार्मिक आन्दोलन भी खड़े हो गए, जिनके कारण हिन्दी गद्य के विकास में सहायता पहुँची, परन्तु उनका आर्यसमाज की तरह हिन्दी को विकसित करना उद्देश्य नहीं था, उनके द्वारा प्राप्त योगदान अप्रत्याशित था। ''आर्यसमाज तथा अन्य धार्मिक आन्दोलनों के कारण हिन्दी भाषा तथा गद्यशैली का पर्याप्त विकास हुआ, यह निर्विवाद है।'' (आधुनिक हिन्दी साहित्य : डॉ. वार्ष्णेय, पृ. १४०)

राजाओं को हिन्दी-शिक्षण की प्रेरणा

स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के एक-एक पृष्ठ पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट से स्पष्टतर होता जाता है कि हिन्दी का विकास उनके प्रत्येक कार्यकलाप के साथ जुड़ा हुआ था। किसी भी स्थिति में भावनाओं ने उसे भुलाया नहीं, क्रियाओं ने उसे छोड़ा नहीं। राजाओं के प्रासादों में भी उसी योजना को क्रियान्वित करने की चिन्ता है तो रंकों की झोंपड़ियों में भी उस योजना को पहुँचा देना चाहते हैं। आर्यसमाज की स्थापना तक स्वामी जी का सम्पर्क जनसामान्य के घरों तक पहुँच चुका था। राजाओं ने भी स्वामी जी के सम्बन्ध में विख्यात चर्चाओं को सुनकर उन्हें अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया। वहीं पहुँचकर स्वामी जी ने सुधार कार्यों के साथ-साथ हिन्दी को भी महलों के सिंहासनों पर बिठाने का प्रयास किया और कहना न होगा कि वह उसमें सफल भी हुए। प्रस्तुत उदाहरणों से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि स्वामी जी के मन में हिन्दी के प्रति कितनी निष्ठा और श्रद्धा थी।

सर्वप्रथम स्वामी जी उदयपुराधीश के निमन्त्रण पर

उनके यहाँ पहुँचे। वहाँ राजा को छः शास्त्रों का मुख्य-मुख्य विषय, मनुस्मृति, विदुर प्रजागर आदि ग्रन्थों का अध्ययन हिन्दी माध्यम से कराया। राजा ने हिन्दी को अपना लिया। प्रसिद्ध इतिहास लेखक गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने स्वामी जी की प्रेरणा के प्रभाव को इस प्रकार वर्णित किया है-

''उन्होंने (उदयपुराधीश) संस्कृत शैली से राजकीय कार्यालयों के नाम रखे, जैसे- महद्राजसभा, शैलकान्तर सम्बन्धिनी सभा, निज सैन्य सभा, शिल्प सभा आदि।'' (Dayanand Com. लेख, महर्षि दयानन्द सरस्वती और महाराणा सज्जन सिंह, पृ. ३६८)

आगे वह लिखते है -''मेवाड़ में राजकीय भाषा हिन्दी थी, परन्तु उसमें फारसी शब्दों का अधिक प्रयोग होता था, यह देख महर्षि ने महाराजा को राजकीय भाषा में शुद्ध नागरी को स्थान देने और साधारण लोगों की समझ में आ सके, ऐसी भाषा के रखने का आग्रह किया। स्वामी जी का आदेश स्वीकार कर महाराज ने नागरी लिपि और सरल भाषा में कार्य करने की आज्ञा जारी की।'' (वही, पृ. ३६९)

इसी प्रकार, शाहपुराधीश को भी महर्षि ने हिन्दी माध्यम से मनुस्मृति, पातञ्जल योगदर्शन, वैशेषिक दर्शन तथा व्याकरण का अध्ययन कराया और राज्य में हिन्दी के माध्यम से कार्य करने की प्रेरणा दी।

जोधपुर नरेश के निमन्त्रण पर स्वामी जी जोधपुर पहुँचे। वहाँ भी प्रतिदिन हिन्दी में सामूहिक भाषण देते थे। नरेश के लिए उपदेश तथा अध्यापन का पृथक् भी प्रबन्ध चलता था। वहाँ से लौट आने के पश्चात् स्वामी जी का नरेश से पत्र-व्यवहार चलता रहा जिसमें पुनः अपने सुझाव के प्रति सजग किया है। ऐसा ही एक पत्रांश उद्धृत किया जाता है, जिसमें स्वामी जी ने राजकुमारों को हिन्दी पढ़ाने के लिए प्रेरित किया है। प्रस्तुत सन्दर्भ स्वामी जी की आशाओं का जीवन्त प्रमाण है-

''महाराज कुमार के संस्कार सब वेदोक्त कराइएगा। पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रखकर प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या जो कि सनातन आर्यग्रन्थ हैं...पढ़ाने चाहिएं।'' (ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, पृ. ४६५)

इस उद्धरण में संस्कृत से भी पूर्व हिन्दी का अध्ययन करने के लिए लिखा है। इस प्रकार महर्षि का सम्बल पा कर प्रासादों में भी हिन्दी की जागरूकता बनी रही।

साहित्य संरचना

महर्षि ने प्रायः अपना साहित्य-सर्जन हिन्दी में किया है। संस्कृत में लिखित ग्रन्थों का हिन्दी रूपान्तरण भी अवश्य कराया है। हिन्दी गद्य साहित्य में महर्षि के प्रस्थानत्रयी के रूप में प्रसिद्ध सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं, जिनमें हिन्दी गद्य का प्रारम्भिक प्रौढ़ रूप प्राप्त होता है। महर्षि की भाषा में यथास्थान शान्त, व्यंग्य, हास्य, वीर रस की शैली का सुन्दर समावेश है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त, सामान्यजन तक सुविधापूर्वक अपनी बात पहुँचाने के लिए महर्षि व्याख्यान और शास्त्रार्थ भी हिन्दी में करने लगे थे। महर्षि की प्रेरणा से हिन्दी भाषा में पत्रिकाएँ भी आरम्भ हो गयी थी। महर्षि के जीवनकाल में तीन पत्रिकाएँ चल रही थीं- आर्यदर्पण (१८७०), आर्यभूषण (१८७६), भारत सुदशा प्रवर्तक (१८७९)। महर्षि ने आर्यसमाज के माध्यम से अपनी योजनाओं का विराट रूप क्रियान्वित किया। वह हिन्दी के प्रतिष्ठाता थे और आधुनिक भारत के निर्माता थे।

स्वामी जी द्वारा हिन्दी की सर्वाङ्गीण सेवा करने पर भी उन्हें इतिहास में या मूल्यांकन में उचित स्थान न मिला, इस पर आश्चर्य होना स्वाभाविक-सी बात है। स्वामी जी की खण्डनात्मक शैली ही इसमें उपेक्षा का कारण बनी है, ऐसा लगता है। परन्तु इतने से ही उपेक्षावादियों को मनस्तोष हुआ होगा, यह भी एक कौतूहल ही है। कुछ एक हिन्दी इतिहास लेखकों के मस्तिष्क में उभरनेवाली सैद्धान्तिक प्रतिक्रिया या उपेक्षा ने उनकी कलम में स्वतन्त्रता न आने दी, तटस्थता को वह न अपना सके। स्वामी जी की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन और उनकी संवेदनाओं का अनुभव करके उनकी हिन्दी सेवा का आकलन करने का इतिहासकारों को समय नहीं मिल पाया। कई ने तो स्वामी जी के साहित्य की चर्चा करना ही इतिहास के बाहर की बात समझी। परन्तु क्या इस अपंगता को जानने-पहचाननेवाले व्यक्ति उन इतिहासों को पूर्ण या प्रमाणार्ह मान लेंगे? कदापि नहीं।

- डॉ. सुरेन्द्र कुमार

अग्नि सूक्त-११

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रहा है। गत अंक में मृत्यु सूक्त का अन्तिम व्याख्यान प्रकाशित हुआ। आप सभी ने उक्त सूक्त को उत्सुकतापूर्वक पढ़ा। आप सबकी इस वेद-जिज्ञासा को ध्यान में रखकर शीघ्र ही यह पुस्तक रूप में भी प्रकाशित कर दिया जायेगा। इस अंक (मार्च प्रथम) से ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'अग्निसूक्त' की व्याख्यान माला प्रारम्भ की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर जी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा जी ही कर रही हैं। -सम्पादक

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम्।।

इस वेद-ज्ञान की चर्चा में हम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त के तीसरे मन्त्र पर विचार कर रहे हैं। मन्त्र के समुदाय को हम सूक्त कहते हैं। **सु** कहते हैं अच्छे को, **उक्त** कहते हैं कहने को। सूक्त का ऋषि मधुच्छन्दा, देवता अग्नि, छन्द गायत्री और स्वर षड्ज है। हमने इस मन्त्र के जड़ पदार्थपरक अर्थों पर विचार किया, अब चेतनपरक विचार भी कर सकते हैं, क्योंकि जहाँ अग्नि जड़ है वहाँ अग्नि चेतन पदार्थ के रूप में परमेश्वर का वाचक है। परमेश्वर का वाचक कैसे है, इसके लिए एक उदाहरण- अग्नि का एक नाम जातवेदा है। **जातवेदस्** यह भी उसका अप्रसिद्ध नाम नहीं है। इसे हम बहुत प्रकार से जानते हैं जैसे- **अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया...।**

इस मन्त्र में **जातवेदा** कहा है और **अग्निर्वै जातवेदा**। जातवेदा अग्नि है और अग्नि जातवेदा है। दोनों में कोई समानता होनी चाहिये तभी तो पर्याय बनेगा। अग्नि में जो गुण है, वह जातवेदा में भी घटता है। जातवेदा शब्द का अर्थ है **जाते-जाते विद्यते** अर्थात् प्रत्येक जो विद्यमान पदार्थ है, उसके अन्दर उसकी उपस्थिति है। और भी इसके बहुत सारे अर्थ हैं **जातवित्तो वा, जातविद्यो वा, जातप्रज्ञानो वा, जातधनो वा** अर्थात् जिसके पास धन है, जिसके पास विद्या है, जिसके पास ज्ञान है, वह भी जातवेदा है। लेकिन जो सहज समानता है वह विद्यमान होने की है। अर्थात् अग्नि सब जगह विद्यमान है, इसलिये जातवेदा है।

परमेश्वर भी सब स्थानों पर विद्यमान है इसलिये उसको भी जातवेदा कहते हैं। अग्नि को अग्नि कहते हैं, क्योंकि वह सबसे पहले है, इसकी चर्चा पहले भी की गई है। इसका नाम भी पहले है, इसका कार्य भी पहले है, इसके गुणों में भी प्राथमिकता है, तो प्रथम होने से इस संसार में अग्नि है। संसार में सबसे प्रथम परमेश्वर है इसलिये परमेश्वर भी अग्नि है यहाँ पर मन्त्र में हम परमेश्वर को मानकर इस मन्त्र का अर्थ देखें और विचार करें तो मन्त्र का अर्थ इस प्रकार से हो सकता है, **अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे यशसं वीरवत्तमम्।** परमेश्वर के द्वारा धन को, ऐश्वर्य को प्राप्त किया जाता है, किया जा सकता है। अब भौतिक अग्नि से तो केवल भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन परमेश्वर अग्नि की उपासना से भौतिक व आध्यात्मिक दोनों ऐश्वर्य प्राप्त किये जा सकते हैं, क्योंकि भौतिक अग्नि का भी अधिष्ठाता ईश्वर है, उसका भी स्वामी परमेश्वर है और जो आत्मिक है, आध्यात्मिक अग्नि है उसका भी अधिष्ठाता परमेश्वर है। इसलिये भौतिक अग्नि की उपासना से केवल भौतिक पदार्थों के लाभ की बात समझ में आती है, लेकिन जब हम परमेश्वररूप अग्नि की उपासना करते हैं तो भौतिक और आध्यात्मिक दोनों लाभ की प्राप्ति की आशा की जा सकती है। वह परमेश्वर अपने उपासकों को समस्त ऐश्वर्य और सुखों का देनेवाला है।

वह समस्त ऐश्वर्य व सुखों को कैसे देता है? जब हम अग्नि की उपासना करते हैं, अग्नि के गुणों को अपने

अन्दर धारण करते हैं, अग्नि की योग्यता अपने अन्दर ले आते हैं तो हमें अग्नि से होनेवाले लाभ स्वत: होने लगते हैं। परमेश्वर का ही सारा ऐश्वर्य है, सारा संसार परमेश्वर का है, इसलिये जब हम उसे पाते हैं तो समस्त ऐश्वर्य को अनायास पा लेते हैं। समस्त ऐश्वर्य उसका है और यदि हम उसको पा लेते हैं, उसको प्रसन्न कर लेते हैं तो जो उसका ऐश्वर्य है उसे पाने में हमें कठिनाई नहीं होती। उसकी प्रसन्नता से हमको सब कुछ प्राप्त होता है, हो सकता है और उसका ऐश्वर्य कैसा है, कभी समाप्त नहीं होनेवाला है, कभी कम नहीं पड़नेवाला है। वह धन के रूप में दे, सुख के रूप में दे, साधन के रूप में दे, ज्ञान के रूप में दे, वह ऐश्वर्य को कैसा देनेवाला है?

हमने उपासना के सन्दर्भ में एक मन्त्र देखा है- **शन्नो देवी रभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्त्रवन्तु न:।** इस मन्त्र में परमेश्वर के देने की जो विधा, जो प्रकार है उसको समझाया है। उसके द्वारा दी गई वस्तु दिव्य गुणोंवाली हैं। वह सब जगह व्याप्त रहनेवाली है। कहीं मिलती है, कहीं नहीं मिलती है, ऐसी नहीं है। उसका ऐश्वर्य सबको मिल सकता है। सब स्थानों पर मिल सकता है, सब समयों में मिल सकता है। उसके ऐश्वर्य की एक और बड़ी विशेषता है कि उसका ऐश्वर्य सदा सुख देनेवाला ही होता है। उसका ऐश्वर्य कभी भी दु:ख नहीं देता है। सांसारिक ऐश्वर्य जब तक अभावों की पूर्ति होती है तब तक सुख देता है और अभावों की पूर्ति के बाद हमको कष्ट देने लगता है, क्योंकि पहले वह धन हमारी सेवा करता है जब तक वह हमारे उपयोग में आता है, हमारी आवश्यकता को पूरा करता है और उसके बाद हमारी आवश्यकता से अधिक धन हो जाता है, फिर हम उस धन की सेवा करते हैं, उसकी सुरक्षा करते हैं, उसके लिये चिन्ता करते हैं। सांसारिक ऐश्वर्य सदा सुखदायी नहीं होता है, लेकिन परमेश्वर का ऐश्वर्य सदा ही सुखदायी होता है, वह हमें जितना भी मिले थोड़ा ही है और उसका ऐश्वर्य जब मिलता है तो थोड़ा मिलता भी नहीं। जब देनेवाला बहुत सम्पन्न है, दाता बड़ा है तो दान भी बड़ा है। किसी मनुष्य के पास जाते हैं तो कोई एक रोटी देता है, कोई एक समय का भोजन देता है, कोई गेहूँ-चावल दे देता है, कोई साल भर का दे देता है, लेकिन जब ईश्वर देता है तो उसकी कोई सीमा नहीं है। हमारा सामर्थ्य ही उसकी सीमा है, क्योंकि हम अपने सामर्थ्य से अधिक ले नहीं सकते। देने को तो वह उसके सामर्थ्य से दे रहा है लेकिन उसके सामर्थ्य जितना हमारा सामर्थ्य नहीं है। इसलिये हमारे लेने की सीमा तो हो सकती है उसके देने की सीमा नहीं हो सकती। आप वर्षा में कोई पात्र रख देते हैं, थोड़ी देर में भर जाता है उसके बाद बहने लगता है। कोई बड़ा पात्र रख देते हैं वह भी भर जाता है और बहने लगता है, समुद्र भी भर जाते हैं, गड्ढे भी भर जाते हैं, कुएँ भी भर कर ऊपर से उतरने लग जाते हैं, लेकिन उसके देने की सीमा समाप्त नहीं होती, उसकी सीमा आती ही नहीं है। वह इतना देता है, इतना देता है कि वह अपने दान की, अपने सुखों की, अपने ऐश्वर्यों की वर्षा ही करता है। कोई वर्षा में कितना प्राप्त कर सकता है, कितना भीग सकता है? भीगता तो वह उतना ही है, जितना है, उसकी सीमा जितनी है उतना भीग लेता है, उतनी देर भीग लेता है, लेकिन वह कितनी वर्षा कर रहा है, इसकी कोई सीमा नहीं है। इसलिये वह दाता गिनकर नहीं देता, वह सुख गिनकर नहीं देता, वह वर्षा कर रहा है। मुझे पूरा नहीं मिल रहा है, वह मेरे कारण से। मेरा पात्र कितना बड़ा है, मेरी योग्यता कितनी है, मैंने पुरुषार्थ कितना किया है, मेरा कर्म-फल कैसा है। इसके कारण से मेरी क्षमता जो है वह सीमित है। मेरे कर्मों के कारण से और सीमित हो जाती है, क्योंकि कभी-कभी नल के नीचे घड़ा रखो, भर जाता है, लेकिन नल के नीचे यदि उल्टा घड़ा रखा हो तो उस पर कितने भी महीनों, सालों पानी गिरता रहे वह कभी भी नहीं भरेगा। वैसी ही हमारी स्थिति है। हम सुख के लिये उसकी ओर पात्र खुला रखेंगे तो वह भर जाएगा और यदि हमारा पात्र ही उल्टा हो तो वह सुख की कितनी भी वर्षा क्यों न करे उससे हमें कोई प्राप्ति, कोई उपलब्धि होनेवाली नहीं है। इस दृष्टि से वह अद्‌भुत देनेवाला है।

वह '**रयि**' समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी है, ऐश्वर्य उसके पास व्याप्त है। अत: हम जब भी, जहाँ भी, जैसे भी पात्र बनेंगे तो ऐश्वर्य हमको तुरन्त प्राप्त होगा। और उसका ऐश्वर्य कैसा है-**पोषम्**-पुष्टि देनेवाला है। वह हमें शारीरिक

रूप से पुष्टि देनेवाला है, सांसारिक, भौतिक रूप से पुष्टि देनेवाला है, हमें आत्मिक रूप से भी पुष्टि देनेवाला है। हम उसके ऐश्वर्य को पाकर आनन्दविभोर हो जाते हैं, आह्लादित हो जाते हैं। उसका अपूर्व आनन्द जब हमें प्राप्त होता है तो हमारे आनन्द की सीमायें ही टूट जाती हैं। हम उसके आनन्द में विचरण करने लगते हैं, विलीन हो जाते हैं। हमारा पात्र, पात्र नहीं रहता, हम उसके पात्र बन जाते हैं। जितना चाहे उसमें डाल सकता है, जितना चाहे उसमें रख सकता है। इसलिये उसका जो ऐश्वर्य है, उसका जो धन है **'पोषमेव'** पुष्टि देनेवाला है, बढ़ोतरी देनेवाला है, संसार में उन्नति देने वाला है, विकास देनेवाला है।

'दिवे-दिवे' और सब दाताओं का समय होता है, सब दाताओं की सीमा होती है, लेकिन वह सीमातीत है, कालातीत है। **दिवे-दिवे**-दिन-प्रतिदिन, जब-जब हम उसके पास जाते हैं, तब-तब वह हमको ऐश्वर्य देता है, तब-तब वह हमको सुख देता है, तब-तब वह हमें ज्ञान देता है। इसलिये उससे ऐश्वर्य पाने के लिये हमें निरन्तर जाना होता है, **दिवे-दिवे** जाना होता है, प्रतिदिन जाना होता है। हम प्रतिदिन जायेंगे, क्योंकि हमारा पात्र छोटा है, एक बार भर गया तो सारी आयु तो हमारा उतने से नहीं चलनेवाला। हमारा पात्र छोटा है तो हमें उसे बार-बार भरना पड़ेगा। उसके लिए बार-बार जाना पड़ेगा। हमें दिन प्रतिदिन उसके पास जाना है।

पोषमेव दिवे-दिवे केवल पुष्टि, पुष्टि के अतिरिक्त कुछ नहीं। अच्छा उन्नत, सुन्दर। और कैसा होगा- **यशसम्।** भौतिक ऐश्वर्य पाने के बाद आवश्यक नहीं है कि कोई हमारी प्रशंसा ही करे। कोई हमें लुटेरा भी कह सकता है, जमा करनेवाला भी कह सकता है, बेईमान भी कह सकता है, इकट्ठा करनेवाला बता सकता है। लेकिन जब हम परमेश्वर के ऐश्वर्य को प्राप्त करेंगे तब हमारे पास कितना भी ऐश्वर्य क्यों न हो, कोई भी व्यक्ति हमें कभी भी दूसरे के ऐश्वर्य को लेनेवाला नहीं कहेगा, क्योंकि परमेश्वर के ऐश्वर्य में सभी की भागीदारी है, लेकिन सभी ससीम हैं। उसके पास इतना ऐश्वर्य है कि हमारे ऐश्वर्य की प्राप्ति की सीमा समाप्त हो जाती है, लेकिन उसके ऐश्वर्य की प्राप्ति की सीमा किसी के लिये भी समाप्त नहीं होती। जो भी उसे पाता है सभी उसके ऐश्वर्य के पात्र बनते हैं, यशस्वी बनते हैं, यश के भागी बनते हैं। उससे प्राप्त होनेवाला जो ऐश्वर्य है, जो धन है, जो सुख है वह हमें यशस्वी बनानेवाला होगा। हम स्वयं तो सुखी होंगे ही और जो भी व्यक्ति हमारे सुख के साथ जुड़ेगा वह भी हमारे सुख से लाभान्वित होगा, उस सुख का प्रशंसक होगा। अर्थात् उस परमेश्वर से प्राप्त होनेवाला जो ऐश्वर्य है उसमें कहीं भी निन्दा नहीं है आलोचना नहीं है, बुराई नहीं है। **वीरवत्तमम्**- हमारे बल को भी बढ़ानेवाला है, ज्ञान को बढ़ानेवाला है, सामर्थ्य को बढ़ानेवाला है। हमारी योग्यता को बढ़ानेवाला है इसके लिए इस मन्त्र में जो शब्द कहे गए हैं वो अद्‌भुत हैं, चिन्तनीय हैं।

आर्यजगत् के समाचार

आर्यवीर दल पाली में आर्य वीर-वीरांगनाओं द्वारा हैरतअंगेज प्रदर्शन किया गया, जिसमें दल की अध्यक्षा छवि आर्या, प्रशिक्षक श्री भरत आर्य, श्री योगेन्द्र देवड़ा, श्री हनुमान जांगिड़, खेल मन्त्री भंवर गौरी के नेतृत्व में आर्य वीर वीरांगनाओं ने शारीरिक व्यायाम प्रदर्शन किया। आर्यवीर दल के अध्यक्ष श्री धनराज आर्य ने सभी आगन्तुकों का आभार व्यक्त किया।

आर्यसमाज सरदारपुरा, जोधपुर ने १५ अगस्त स्वतन्त्रता दिवस की ७५वीं वर्षगांठ पर मन्त्री श्री मदनलाल गहलोत के द्वारा राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया। कार्यक्रम में श्री पद्मसिंह चौधरी, श्री लक्ष्मणसिंह, श्री हरेन्द्र गुप्ता, श्री राधेश्याम आर्य, श्री श्यामसुन्दर आर्य आदि उपस्थित रहे।

शोक समाचार

आर्यसमाज कैलाश, ग्रेटर कैलाश-१, महिला सत्संग की प्रधाना श्रीमती अमृतपाल के पति **डॉ. एस.डी. पाल** का १४ अगस्त २०२१ को स्वर्गवास हो गया।

१० अगस्त २०२१ को अजमेर निवासी **श्री नाथूलाल कांकाणी** का आकस्मिक निधन ८७ वर्ष की आयु में हो गया। उनकी अन्त्येष्टि वैदिक रीति से सम्पन्न हुई। श्री कांकाणी की परोपकारिणी सभा के सेवा प्रकल्पों में सहभागिता थी। वैदिक विचारधारा में उनकी अत्यन्त निष्ठा थी। वह परोपकारिणी सभा के कार्यकर्त्ता श्री वासुदेव आर्य के बहनोई थे।

परोपकारी परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

आओ! इतिहास से कुछ सीखें- आर्यसमाज के आरम्भिक काल के सब मिशनरियों के जीवन में व्यवहार में कुछ ऐसी विशेषतायें थीं कि उनकी वाणी और लेखनी ने तो उनके सम्पर्क में आनेवालों के जीवन पलटे ही, उनके आचरण, उनके सरल व्यवहार ने भी उनके निकट आनेवालों पर उनकी ऐसी छाप छोड़ी कि आर्यसमाज धार्मिक जगत की एक विलक्षण संस्था के रूप में इतिहास में चमक उठा। आइये! हम भी अतीत के इतिहास की एवं अपने बड़ों के जीवन की शिक्षाप्रद सरल मधुर घटनाओं का स्मरण करके (जीवन के जिस पड़ाव पर भी हैं) कुछ सीखें और लाभ लें।

आर्यसमाज की पहली पीढ़ी के एक मिशनरी- श्रीयुत मेहता जैमिनि, पं. गुरुदत्त, पं. लेखराम जी पहली पीढ़ी के महापुरुषों के संग कार्यक्षेत्र में उतरे। मैंने उन्हें अति निकट से देखा। देश-विभाजन के थोड़ा समय पश्चात् वे अबोहर के समीप गिदड़बाहा मण्डी समाज पधारे। तब आप संन्यास ले चुके थे। पं. ओमप्रकाश वर्मा भी आपके साथ थे। इस कस्बे में लोगों पर आपकी गहरी छाप थी। हर कोई यह चाहता था कि आप उनके निवास पर रुकें, परन्तु एक समस्या सबके सामने थी।

तब मेहता जी के अत्यन्त योग्य सुपुत्र गिदड़बाहा में सरकारी डॉक्टर थे। वह नगर के सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। सब समझते थे कि वह पंजाब में अत्यन्त ऊँची योग्यता के डॉक्टर, अपने सुपुत्र के पास ठहरेंगे। डॉक्टर जी की इच्छा भी यही थी। वर्मा जी समाज मन्दिर में अपना आसन जमा चुके थे। आपने दृढ़तापूर्वक कहा, ''मैं यहीं वर्मा जी के साथ समाज मन्दिर में ही रुकूँगा।'' भक्तों के निमन्त्रण पर उनके घरों में भी भोजन के लिये जाते रहे। अपने सुपुत्र के यहाँ भी भोजन किया, परन्तु स्वामी जी का दरबार दिनभर समाज मन्दिर में ही लगा रहता। डॉक्टर जी दिन में कई बार सेवा-सत्कार पूछने आते।

सारा नगर आर्यसंन्यासी के इस व्यवहार को देखकर दंग रह गया। प्रभाव तो गिदड़बाहा में पहले ही उनका बहुत था, परन्तु आर्यसंन्यासियों की विलक्षणता को नगर ने अब भली प्रकार से जाना। उस यात्रा की कई शिक्षाप्रद घटनायें वर्मा जी और आर्यजन सुनाया करते थे।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की महानता और सरलता- स्वामी जी रामाँमण्डी, लुधियाना, उपदेशक विद्यालय में विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे। दीनानगर में भी जीवन की साँझ तक पढ़ाते रहे। पं. शान्तिप्रकाश जी, स्वामी रुद्रानन्द जी, पं. सुधाकर जी, पं. नरेन्द्र जी, पं. निरञ्जनदेव जी, कविवर अजीतसिंह किरती, स्वामी सर्वानन्द जैसे जाने-माने शिष्यों के इस गुरु ने कभी भूलकर भी लेखनी व वाणी से यह नहीं कहा, अमुक विद्वान् मेरा शिष्य है। **अपने शिष्यों को सदा उपदेशक विद्यालय आदि का स्नातक बताकर चर्चा किया करते।**

पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी भी '**मठ का स्नातक**' बताकर शिष्यों की चर्चा किया करते। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी माताओं के सदृश सब शिष्यों को स्नेह से सने हृदय से आधे नाम से ही यथा राम, शान्ति, शिव, नरेन्द्र, निरञ्जन कहकर पुकारा करते थे। पं. नरेन्द्र जी बताया करते थे, ''जब कभी किसी को पूरा नाम लेकर पुकारते तो सब समझ जाते कि आज कोई भूल स्वामी जी की दृष्टि में आ गई है।''

पं. नरेन्द्र जी को 'मुंशा' कहकर भी पुकारा करते थे। व्याख्यान में, लेख में पं. शान्तिप्रकाश जी, पं. रामचन्द्र जी, पं. शिवदत्त जी, पं. नरेन्द्र जी आदि कहकर सबका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया करते थे। उनके स्नेह का स्मरण कर सब भक्त आज भी फड़क उठते हैं।

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय के हृदय की तड़पन- अपने निधन से कोई साढ़े आठ वर्ष पूर्व 'मेरी हालत' शीर्षक से उपाध्यायजी ने एक पठनीय रोचक लेख लिखा था। मैं उनकी मन:स्थिति को बहुत गहराई से जानता हूँ सो 'मेरी हालत' लेख पर ३२ पृष्ठ तक की एक पुस्तिका लिख सकता हूँ। आप इसमें लिखते हैं, ''नये-नये विचार मस्तिष्क में उठते हैं। कभी-कभी सिद्धान्तों की गम्भीर समस्याओं पर कुछ प्रकाश सा प्रतीत होता है, परन्तु वे साधन उपलब्ध नहीं कि अपने विचारों से दूसरों को लाभान्वित किया जा सके। मस्तिष्क भी

ठीक है तथा हृदय भी, परन्तु शरीर सहायता नहीं करता।''

उपाध्याय जी के **मन व मस्तिष्क में वैदिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार की तड़प के अतिरिक्त कुछ था ही नहीं।** शरीर के दु:ख-कष्ट की कतई चिन्ता नहीं थी। दूसरों तक विचार कैसे पहुँचाऊँ? यही एक चिन्ता लगी रहती थी।

शेष जीवन कैसे बिताऊँ?- आपके सामने जीवन की साँझ में वैदिक विचारधारा के प्रसार के लिये शेष जीवन कैसे बिताया जावे? यही एक समस्या थी। इस लेख के लिखते समय आपकी आयु ७८ वर्ष से कुछ ऊपर थी। जो जन सत्तर वर्ष को पार करके ७१ वें वर्ष में प्रविष्ट हो चुके हैं, क्या उनके मन में यह विचार कभी आया है?

यदि नहीं आता अथवा नहीं आया तो हमने ऐसे पूज्य पुरुषों से कुछ नहीं सीखा- मैं नब्बेवाँ वर्ष पार कर चुका हूँ। मेरे सामने सदा यह विचार रहता है कि शेष जीवन के एक-एक पल का वैदिक धर्म के लिये कैसे सदुपयोग हो? उपाध्याय जी ने क्या सोचा? उनके शब्दों में पढ़िये। ''केवल यही ढंग है। कुछ होनहार जोशीले नवयुवक पढ़ना चाहें तो मैं दो-दो घण्टे देकर दिन में चार घण्टे बहुत आसानी से दे सकता हूँ। मैंने दो युवकों पर ऐसा प्रयोग किया है। दो-ढाई मास में बिना व्याकरण के उनमें संस्कृत की इतनी योग्यता हो गई कि वे सरल कहानियों को बिना अनुवाद के समझ सकते हैं।''

उपाध्याय जी ने बाहर के विद्यार्थियों से अपने भोजन व निवास की व्यवस्था करके सिद्धान्तों अथवा संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने का सुझाव दिया था।

एक बार आपने लिखा था, मेरे पास आओ, कुछ सीखो। गप्पें मारनेवाले मेरे पास आकर गप्पें मारें। मैं भी उनकी गप्पें सुनूँगा। किसी ने पूछा, इससे क्या लाभ होगा? वे क्या सीखेंगे? आपने कहा, मैं उनकी गप्पें सुनूँगा। सुनकर अपने ढंग से कुछ प्रतिक्रिया दूँगा। मेरी गप्प सुनकर उनमें सत्यासत्य का कुछ विवेक होगा। इतनी तड़प जिस महापुरुष में हो, हम बार-बार उनकी जीवनी पढ़ेंगे तो निश्चय ही हमारा, देश का व समाज का भला होगा।

बड़ों का बड़प्पन- इतना प्यार! जीवन के इस मोड़ पर जीवन भर समाज-सेवा में एक-एक श्वास देनेवाले सब पूज्य विद्वानों और महापुरुषों की समाज-सेवा की शिक्षाप्रद घटनायें मुझे बहुत याद आती व गुदगुदाती रहती हैं। अनेक जन चलभाष पर यदा-कदा व सदा ऐसे प्रसंग मुझसे पूछते रहते है। जिनके प्रेम से मैं स्वयं को दबा-दबा अनुभव करता हूँ, उनके कुछ ऐसे प्रसंग संक्षेप से जनहित में यहाँ देता हूँ।

पूज्य उपाध्याय जी बुढ़ापे में यदा-कदा रुग्ण रहते थे। मैं ग्रीष्म अवकाश में शोलापुर से पंजाब आया तो प्रयाग पूज्य उपाध्याय जी को पत्र लिखकर सूचना दी कि मैं आपके स्वास्थ्य का पता करने तथा दर्शनार्थ आ रहा हूँ। लौटती डाक आपका आदेश मिला कि यहाँ दंगों के कारण स्थिति ठीक नहीं। आप अभी मत आयें। कारण? दंगों के समय बाहर से आनेवाला अपरिचित व्यक्ति दंगाइयों से अधिक दु:ख पाता है। यह आदेश उनके हृदय के उच्च भावों तथा आत्मीयता का कैसा प्रमाण है!

जब ठाकुर अमरसिंह मिलने आये- मैं तब धुरी पंजाब में रहता था। सन् १९६१ के अन्तिम महीनों की बात है। आर्यसमाज के पास ही मेरे निवास पर समाज का सेवक आया। कहा, समाज में एक पण्डितजी आये हैं। आपसे मिलना चाहते हैं। मैं झट से समाज मन्दिर पहुँचा तो ठाकुर अमरसिंह जी के दर्शन करके आनन्दित हुआ। वह मुझे मिलकर मुझसे भी कहीं अधिक आनन्दित हुए। यही तो उनका आर्यत्व व बड़प्पन था।

आपका इधर आना कैसे हो गया? मैंने पूछा। बताया कि पंजाब में कहीं कथा करके घर लौट रहा था। आपसे मिलने को जी कर आया तो अपना मार्ग बदलकर इस लम्बे रास्ते से जाने का मन बनाकर धुरी पहुँच गया। ऐसी आत्मीयता आर्यसमाज के संगठन का सीमेन्ट रही।

पं. युधिष्ठिर मीमांसक की अन्तिम वेला में- श्री पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक के दर्शनार्थ में बहालगढ़ जाता रहता था। उनके निधन से थोड़ा समय पहले उनके हालचाल पता करने की उत्कट अच्छा जागी। यह पता था ही कि अब वह किसी भी समय देह का त्याग कर सकते हैं। मैं उनके चरणों में उपस्थित हुआ तो लगा कि पण्डित जी ने मुझे पहचाना ही नहीं। सेवा करनेवालों ने मेरा नाम लेकर बताया कि आपके दर्शनार्थ आये हैं।

झट से मुझे पता चल गया कि शास्त्र-चर्चा, धर्म-चर्चा करते हुए सब कुछ याद था, परन्तु मुझे कहा, ''पण्डित जी क्षमा करना आपसे कभी मिलन नहीं हुआ सो...'' उनका यह

कथन सुनकर दंग रह गये। अब पण्डित जी ने अत्यन्त उत्साह से 'आर्य सन्मार्ग सन्दर्शनी सभा' कोलकाता से जुड़े 'रसाला एक आर्य' की चर्चा छेड़कर उसको दिखाने की इच्छा प्रकट की और मुझे आज्ञा दी कि आर्यजगत् को बता दो कि इसमें दिया गया उत्तर ऋषिजी से पूछकर दिया गया है। फिर कहा कि मुझे एक बार मेरे मरने से पहले यह अवश्य दिखा दें। मैंने कहा, ''उर्दू की पुस्तक देखने मात्र से आपको क्या लाभ होगा?'' ज्ञानपिपासु पण्डित जी बोले, ''**मुझे सन्तुष्टि तो होगी कि मैंने यह पुस्तक देखी तो है।**'' सोचिये, कैसे ज्ञानपिपासु थे!

अब उनसे अन्तिम भेंट की एक विशेष और अविस्मरणीय बात उल्लेखनीय है। मैंने विदा होते हुए नमस्ते करके चलना चाहा तो आपने अत्यन्त प्रेम से आग्रहपूर्वक कहा, ''**एक रात्रि यहीं हमारे पास आज रुकिये।**'' मेरा आगे जाने का कार्यक्रम निश्चित था। मैं उनकी आज्ञा मानकर रुक न सका। इसका मुझे आजीवन खेद रहेगा और वह कुछ ही दिन में चल बसे।

आचार्य बलदेव जी से मेरी अन्तिम भेंट- आचार्य बलदेव जी के रुग्ण होने का पता लगा तो मैं रोहतक उनके चरणों में पहुँच गया। स्वास्थ्य जैसा था वह देखते सब पता चल गया। अतिथियों के लिये कुछ कमरे बनवाये, वे दिखाये। सामाजिक बातें होतीं रहीं, फिर मैंने अनुमति माँगी तो आपने वहाँ रुकने का बड़ा आग्रह किया। मैंने कहा, ''मैं अगली बार यहाँ अवश्य रुकूँगा।''

वहाँ से अनुमति लेकर अबोहर पहुँचा तो ''आचार्य जी चल बसे'' यह समाचार पाकर पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक से अन्तिम भेंट का स्मरण हो आना एक स्वाभाविक सी बात थी। जिन महापुरुषों को घर-परिवार का मोह न बाँध सका उनकी समाजसेवकों से ऐसी प्रीति-ऐसी आत्मीयता सारे समाज के लिये अनुकरणीय तथा अविस्मरणीय है। इतिहास ऐसी घटनाओं से ही तो बनता है।

जोगलेकर का मिथ्या कथन और महर्षि की पूना यात्रा- महर्षि के जीवन की कुछ घटनाओं व कुछ पहलुओं पर हमारे कई विचारशील विद्वान् व लेखक बहुत उत्साह से लिखते व बोलते हैं। विरोधियों की पूना की 'गर्दभ यात्रा' पर सन् १९४७ तक मैंने बहुत सुन्दर लेख व भावपूर्ण व्याख्यान सुने। अब ऋषि-जीवन की पूना-यात्रा के विविध पक्षों तथा ऐतिहासिक घटनाओं की ओर हमारे गुणियों ने कभी कोई विशेष मौलिक व खोजपूर्ण लेख नहीं दिया। डॉ. कुशलदेव जी के और मेरे अनुसन्धान का नई पीढ़ी तथा पुराने लेखकों ने भी पूरा लाभ नहीं उठाया। **महर्षि की पूना यात्रा तो अपने आप में एक अत्यन्त व्यापक विषय है।** इस पर ४००-५०० पृष्ठों का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जाना चाहिये।

मैं क्रमशः इस पर लिखता रहूँगा। पूना में महर्षि के घोर विरोधियों में से एक थे जोगलेकर। आप पूना के जन्माभिमानी दल के एक प्रमुख कर्णधार थे। यह ऋषि के सामने आकर तो अपना पक्ष रखने का साहस न कर सके। बस दूर-दूर से ही डींगें मारते रहे। पूना की गर्दभ यात्रा के आयोजकों में से एक मुख्य व्यक्ति थे श्री जोगलेकर। इसीलिये श्री देवेन्द्रनाथ जी जब पूना गये तो आपसे भेंट करके आपने उस गर्दभ यात्रा के बारे में आपके विचार जानने चाहे। तब इस चतुर पौराणिक ने श्री देवेन्द्र बाबू जी को स्पष्टीकरण देते हुए कहा था कि स्वामी दयानन्द ने पूना के सुधारक दल की प्रेरणा से ही हिन्दुओं की मान्यताओं तथा देवी-देवताओं पर आक्रमण किया था। **यदि वह सुधारक दल के निमन्त्रण पर न आये हुए होते और हिन्दुओं पर आक्रमण न करते और केवल वैदिक सिद्धान्तों का ही प्रचार करते तो** अनेक लोग उनके अनुयायी बन जाते। यह दुर्घटना कदापि न होती।

जोगलेकर का यह कथन सर्वथा मिथ्या है- तथ्य और सत्य तो यह है कि आर्य विद्वानों ने, लेखकों ने इस कुटिलतापूर्ण कथन का उपयुक्त और यथार्थ प्रतिवाद कभी किया ही नहीं। हरबिलास शारदा सरीखे इतिहासकार ने इसके प्रतिवाद में एक वाक्य नहीं लिखा। 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र' में इस लेखक ने पहली बार जोगलेकर मण्डली की हवा निकाली। नीलकण्ठ शास्त्री महाराष्ट्रियन था। उसका पूना से विशेष सम्बन्ध था। उसके कारण अनेक हिन्दू (ब्राह्मण भी) धर्मच्युत हो गये। पं. गंगाप्रसाद जी शास्त्री सनातनधर्मी विद्वान् नेता की पीड़ा यह थी कि इस ईसाई बने ब्राह्मण ने काशी, हरिद्वार, प्रयाग आदि तीर्थों पर सहस्त्रों हिन्दुओं को विधर्मी बना दिया। पं. गंगाप्रसाद लिखते हैं ऋषि ने इसकी प्रयाग में बोलती बन्द करके धर्म-रक्षा की। यह ऋषि के आगमन के समय भी पूना गया था। जोगलेकर

मण्डली ने नीलकण्ठ शास्त्री पर गोबर, कीचड़ क्यों न फेंकवाया और उसके लिये कब अैर कहाँ गर्दभ यात्रा निकाली गई? रमाबाई ने पूना नगरी में पचास सहस्र हिन्दू स्त्रियों (विधवाओं व कुमारियों) को ईसाई बना डाला। पूना के ब्राह्मणों को गर्दभ यात्रा का उसके लिये आयोजन करना क्यों याद न आया? उसको भारी राशि इस कार्य के लिये पश्चिमी देशों से मिलती रही। जोगलेकर गोरी जातियों के कुकृत्य पर क्यों मौन साधे रहे? मैक्समूलर ने अपनी अन्तिम पुस्तक My Indian Friends में श्रीकृष्ण पर बहुत भद्दी भाषा में वार किया। स्वामी विवेकानन्द जी भी मैक्समूलर के भक्त, प्रशंसक थे। श्रीकृष्ण जी, वेद, उपनिषद, ओ३म् पर उसके प्रहार का क्या उत्तर दिया? आर्यसमाज ने **'मैक्समूलर का ऐक्सरे' पुस्तक छपवाकर श्रीकृष्ण की लाज बचाकर दिखाई।**

लोकमान्य तिलक का पछतावा व रक्तरोदन- इस घटिया घटना के घटित होने के आठ वर्ष पश्चात् महर्षि के बलिदान के समय लोकमान्य तिलक ने अपने 'दैनिक केसरी' में लिखा था कि **हमारे लोगों ने सन् १८७५ में स्वामी जी के अपमान के लिये जो कुछ किया वह सर्वथा निन्दनीय व अनुचित था। यह कुकृत्य अशोभनीय था।**

खेद का विषय तो यह है कि रुढ़िवादियों में से किसी भी बड़े व्यक्ति ने तब इस कुकृत्य पर ईंटें, पत्थर, गोबर व कीचड़ फेंकनेवालों तथा उन्हें उकसानेवालों की भर्त्सना करते हुए एक भी शब्द न कहा।

पूना की कुछ और प्रेरक घटनायें

तभी ऋषि जी के एक पत्र से पूना में आर्यसमाज के स्थापित होने का पता चलता है, परन्तु किसी मिशनरी भावना के कार्यकर्त्ता के अभाव से समाज शीघ्र टूट गया। श्री कुशलदेव जी ने अपने ग्रन्थ में लिखा है, किंवदन्ती जनश्रुति है कि कोल्हापुर नरेश राजर्षि शाहू महाराज ने नानापेठ का जो आर्यसमाज (भवन) है वह आर्यसमाज को दान में दिया था। हमने श्री कुशलदेव जी को यथार्थ इतिहास बताया था, परन्तु अपना ग्रन्थ लिखते समय वह भूल गये। यह जनश्रुति नहीं, हम कठोर सत्य यहाँ देते हैं। श्री कुन्दनलाल चुनियाँवाले पंजाब के एक प्रसिद्ध आर्यसमाजी स्थानान्तरित होकर आर्यसमाज के दमनकाल में सन् १९१७ में पूना में सेना के कार्यालय में चले गये। आपने तीन-चार पंजाबी युवकों को लेकर रविवार पेठ में आर्यसमाज स्थापित करके सत्संग लगाने आरम्भ कर दिये। इन्होंने वैदिक-धर्म प्रचार की धूम मचा दी। कभी लोकमान्य तिलक से मिले, रमाबाई से भेंट की। श्री एन.सी. केलकर से मिलकर महर्षि विशेषाङ्क के लिये लेख प्राप्त किया।

एक दिन इन दीवाने आर्यवीरों को सन्देश मिला कि श्री छत्रपति शाहूजी महाराज आर्यसमाज के अधिकारियों सेवकों को याद करते हैं। ये दीवाने उनकी कोठी में मिलने पहुँच गये। वह अत्यन्त तपाक से, प्रेम से इन्हें मिले। बड़ी आत्मीयता से भ्रातृभाव से इनका सेवा सत्कार किया। इसी भेंट का परिणाम था कि आपने एक भवन आर्यसमाज को दान में दे दिया। उसी में आर्यसमाज मन्दिर बनाया गया। सन् १९१९ में आप सर्विस से त्यागपत्र देकर पंजाब लौट आये। यह प्रसंग मेरी पुस्तकों व लेखों में छपता रहा है।[१] महाराष्ट्र में किसी ने भी मेरी पुस्तकों व लेखों से इस प्रसंग को उद्धृत नहीं किया।

शतियों का इतिहास बदल डाला- पूना में कुछ उत्साही दलित पिछड़े बन्धुओं ने जनकल्याण, दलितोत्थान के लिये पुणे पेठ जूनागंज के यहाँ मोमीणपुर में एक विद्यालय स्थापित किया था। श्री गोविन्द तुकाराम मांग बस्ती। पेठ जूनागंज, दस्तुर खुद। गनुबणि बाबाजी चमार। हारा बी। गोपाल चमार। माहदु सकाराम महार। भाऊ सकाराम मांग। रघु व. बापू महार आदि समाजसेवी पुरुषार्थी सज्जनों ने महर्षि को पूना में जी भरकर सुना और भक्तिभाव से १३ जुलाई १८७५ में लिखित रूप में विनती की कि उक्त ''शूद्र अति शूद्रों के विद्यालय में उपदेश के लिये एक साहब के पास से जगह माँग ली है। इसलिये आप कृपा कर पधारेंगे ही, ऐसी आशा रखकर आपको यह दो दिन पहले सूचना पत्र लिखा है। एतदर्थ आपको पधारना ही चाहिये और हमें उपदेश कर सन्मार्ग पर लगाना चाहिये। यही आपका धर्म है।[२]''

महर्षि जी अत्यन्त उत्साह से इन धर्मबन्धुओं का निमन्त्रण पाकर शतियों की अन्ध परम्पराओं को रौंदते हुए शूद्रों, अतिशूद्रों को वेद की पावन ऋचाओं का उपदेश सन्देश देकर नया इतिहास रच पाये। बड़ौदा, रेवाड़ी, काशी आदि गई नगरों में ब्राह्मणेतर श्रोताओं व स्त्रियों को वेदमन्त्र सुनाने और वेदोपदेश करने के लिये ऋषि को निन्दा और विरोध का पात्र बनना पड़ा

था। रेवाड़ी में महर्षि ने एक यादव को कहा, इन जन्माभिमानी ब्राह्मणों के सामने उच्च स्वर से गायत्री का जप करो। डरो मत। आपको तो पुण्य ही लगेगा। पाप मुझे लगने दो। यह पूना आन्दोलन का अगला पग था।

पूना से इतिहास को नई दिशा दी गई- आर्यसमाज की स्थापना तो महाराष्ट्र की मुम्बई नगरी में हुई परन्तु शूद्र अति शूद्र समझे जानेवाले बन्धुओं तक ईश्वर की वाणी को प्रसारित-प्रचारित करने का आन्दोलन पूना नगरी से आरम्भ हुआ। यह इतिहास लुप्त नहीं रहना चाहिये। इसका ज़ोर-शोर से प्रचार आर्य युवक-युवतियों को करना चाहिये। भव्य भवनों तथा सम्पत्ति इकट्ठी करने से ऋषि मिशन नहीं फैलेगा। खोद-खोद कर जो सामग्री दी जा रही है इसे मुखरित किया जावे। २०२५ ई. में इस क्रान्ति के १५० वर्ष को धूमधाम से मनाने का आर्यवीरों को यश लूटना चाहिये।

निडरता की प्यारी प्रतिमा हमारा प्यारा ऋषि- महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-चरित्र में पूना में ऋषि के विरोधियों की 'गर्दभ शोभा-यात्रा' का अत्यन्त प्रामाणिक और विस्तृत इतिहास दिया गया है और किसी भी ग्रन्थ में इस प्रेरक इतिहास को ऐसे खोज-खोजकर खोद-खोद कर किसने दिया है? गत दस वर्षों में किस-किसने इसका लाभ उठाया।

ऋषि ने पुलिस अधिकारी ट्रेने की एक न सुनी- रात्रि बारह बजे जब सभा समाप्त हुई तो पुलिस इस्पेक्टर ट्रेने भी सभास्थल में उपस्थित था। आपने श्री महाराज से कहा- ''आज की रात्रि आप यहीं भिड़े के बाड़े में ही सो जाएँ। बाहर निकलने पर आप पर आक्रमण होने की आशङ्का है।''

स्वामी जी महाराज ने कहा कि आपका कार्य रक्षा करना है। आप अपना कार्य करें। हम तो अपने डेरे पर ही जाकर शयन करेंगे। पुलिस को विवश होकर श्री स्वामी जी के साथ जाना पड़ा। तब भी दुष्टों ने स्वामी जी तथा पुलिस पर ईंटें फेंकीं।

आश्चर्य की बात है कि कई सूझबूझ वाले प्रसिद्ध लेखकों ने ऋषि जी की निडरता का अपने ग्रन्थों में उल्लेख ही नहीं किया। देवेन्द्र बाबूजी का कथन यथार्थ है कि नित्यप्रति '**अदीनाः स्याम**' की श्रद्धा से प्रार्थना करने के कारण प्रभु के आशीर्वाद से वह अदीन हो गये थे। जैसे काशी, वज़ीराबाद, मुम्बई, जोधपुर आदि नगरों में आक्रमण आदि कुकृत्य करने पर ऋषि ने (प्राथमिकी) पुलिस में न लिखवाई यहाँ भी सबको क्षमा कर दिया। कुछ कहा ही नहीं।

मेहता राधाकिशन जी ने अपने ६१० पृष्ठ के ग्रन्थ में पूना यात्रा पर केवल आठ पंक्तियाँ लिखी हैं। इसे अनर्थ ही तो कहा जावेगा। श्रीमान् लाला लाजपतराय जी ने अपने आठ सौ पृष्ठों के ग्रन्थ में मात्र ड़ेढ पृष्ठ में पूना वृतान्त दिया है। पृष्ठ संख्या २९१ (उर्दू) पर लिखा है, ''उनको हाथी पर बिठलाकर बड़े ठाठ से सारे पूना नगर में फिरा कर लाये थे।'' ऋषि जी ने हाथी पर बैठना स्वीकार नहीं किया था। लाला जी यहाँ चूक कर गये।

'इन्दुप्रकाश' पत्रिका में पूना-यात्रा के समय ऋषि जी के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा गया, परन्तु आगे चलकर ऋषि की विद्वत्ता व तपोबल को समझ गये। लोकहितवादी जी ने उनके मुख से ऋषि का बहुत गुणगान सुना। अहमदाबाद और उस क्षेत्र में ऋषि की प्रचार यात्राओं का प्रेरक भाषा में वर्णन करते हुये अपनी भूल का सुधार कर लिया।

किसी के जीवन-चरित्र में ऐसी घटना नहीं मिलेगी- इतिहासप्रेमी पाठक उन्नीसवीं शताब्दी के किसी भी महापुरुष की जीवनी में ऐसी घटना नहीं दिखा सकते कि रात्रि के बारह बजे पुलिस के रोकने पर भी बड़ी निडरता से किसी ने कहा हो कि मैं तो अपने डेरे पर चलकर शयन करूँगा। कवि ने ऐसे मृत्युञ्जय महापुरुष के लिये ही तो लिखा है-

हथेली पे सिर जो लिये फिर रहा हो
वे सिर उसका धड़ से जुदा क्या करेंगे?

टिप्पणी

१. द्रष्टव्य 'मैं कैसे आर्यसमाजी बना' उर्दू पुस्तक पृष्ठ १०९-११४ तक।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (भाग एक) पृष्ठ ६१-६२ सम्पादक- डॉ. वेदपाल।

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

ऐतिहासिक कलम से....

योगीराज श्रीकृष्ण की उपासना विधि

पण्डित बिहारीलाल शास्त्री

प्राय: महापुरुषों के तीन रूप हुआ करते हैं। लोकरञ्जक रूप यथा श्रीकृष्ण जी की वृन्दावन की लीलाएँ। इस रूप का, शस्त्र होता है- वंशी। दूसरा रूप होता है लोकशिक्षक रूप, यथा महाभारत युद्ध में गीतोपदेश तथा उद्धव को धर्मोपदेश। इस रूप में शंख धारण किया जाता है, यथा युद्ध में 'पाञ्चजन्यं हृषीकेशं भगवान् कृष्ण का पाञ्चजन्य शंख। तीसरा रूप होता है महापुरुषों का लोकरक्षक। यथा दुष्टसंहारक युद्धों में। इसका शस्त्र होता है चक्र। सुदर्शन चक्र से ही शिशुपालादि असुरों का संहार किया।

भगवान् कृष्ण ने तीनों रूपों में जनता को दर्शन दिये और कल्याण किया।

उनके जीवन की घटनाएँ, कविताओं में हैं, अत: उनके भाव को समझना कठिन हो जाता है, जैसे वृन्दावन के चरित्र में राजनैतिक भूमिकाएँ थीं, उन्हें शृंगार रस में डुबोकर भक्तों ने आक्षेप योग्य बना डाला है। 'आनन्द मठ' के राष्ट्रीय गान के निर्माता श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने लिखा है कि मैं महाभारत के श्रीकृष्ण को तो मान सकता हूँ पर 'गीत गोबिन्द' के श्रीकृष्ण को नहीं।

'गीत गोविन्द' में जयदेव ने श्रीकृष्ण के लोकरञ्जक रूप को शृंगार में डुबोकर विकृत कर दिया है। भगवान के नाम पर अपने मन के शृंगारी भावों की भड़ास निकाली है। श्रीकृष्ण भगवान् के विषय में ऋषि दयानन्द का विचार कितना उच्च भावों से भरा है।

''देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्तपुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।'' (सत्यार्थप्रकाश ११वाँ समुल्लास)। वास्तव में श्रीकृष्ण भगवान्, वैदिक आर्य थे। यह उनकी उपासना-विधि से विदित हो जाता है। यदि कोई मनुष्य नमाज पढ़ता हो तो मुसलमान माना जाएगा। मूर्तिपूजक है तो जैन, बुद्ध, पौराणिक या कैथोलिक, ईसाई, ठहरेगा। इसी प्रकार सन्ध्या, अग्निहोत्र गायत्री जप करनेवाले को वैदिकधर्मी आर्य कहा जायेगा।

अब देखिये श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण भगवान् की दिनचर्या-दशम स्कन्ध अध्याय ७० में **ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय वायु र्पस्पृश्यमाधव:। दध्यौ प्रसन्नकरण: आत्मानं तमस: परम्। एकं स्वयं ज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्य निरस्त-कल्मषम्। ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाश हेतुभि: स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम्।। ५।।**

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी। चकार सन्ध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यत:।। ६।।

अर्थ- श्रीकृष्ण जी ब्राह्ममुहूर्त में (उषाकाल) उठे और शौच आदि से निवृत्त हो, प्रसन्न अन्त:करण से, तमस से परे, आत्मा अर्थात् परमात्मा का ध्यान किया। ४।

परमात्मा के विशेषण - जो एक है, स्वयं ज्योतिस्वरूप है अनन्त है, अव्यय परिवर्तनरहित है, अपनी स्थिति से भक्तों के पापों को नष्ट करता है, उसका नाम ब्रह्म है। इस संसार की रचना और विनाश के हेतुओं से अपने अस्तित्व का प्रमाण दे रहा है और भक्तों को सुखी करता है। ५।

और निर्मल जल में स्नान करके यथाविधि क्रिया के साथ दो वस्त्र धारण करके सन्ध्या की विधि की और श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने हवन किया और मौन होकर गायत्री का जाप किया। ६।

श्लोक में आये **ब्रह्म** शब्द का अर्थ श्रीमद्भागवत् की संस्कृत टीका में श्रीधर स्वामी ने गायत्री जजाप इत्यर्थ- गायत्री किया है। गीता प्रेस की हिन्दी टीका में भी ऐसे ही अर्थ हैं। श्रीमद्भागवत में कहीं भी श्रीकृष्ण द्वारा मूर्तिपूजा करना नहीं मिलता है और वाल्मीकि रामायण में कहीं श्रीराम द्वारा मूर्तिपूजा का नाम नहीं। अब ईश्वर के नाम के विषय में देखिये गीता के ८वें अध्याय का श्लोक है-

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामऽनुस्मरन् य: प्रयाति त्यजनदेहं सयाति परमांगतिम्। अर्थ- ओम् इस एक अक्षर ब्रह्म (शब्द) बार-बार जपता हुआ और मेरा अनुस्मरण करता हुआ जो शरीर को छोड़कर परलोक को जाता है, वह मोक्ष को पाता है।

शङ्का समाधान-६०

डॉ. वेदपाल

१६/०३/२०२१ को मेरे द्वारा प्रेषित शङ्काओं का आपके द्वारा समाधान परोपकारी मई द्वितीय-जून द्वितीय २०२१ के अंक से प्राप्त हुआ। आपको बार-बार साधुवाद

मेरी आगामी एक शङ्का और है कृपा करके उसका भी आप समाधान करने का कष्ट करेंगे, ऐसी मेरी आशा है।

शङ्का- १. संस्कारविधि के सामान्य प्रकरण में ओम् अयन्त इध्म आत्मा...मन्त्र द्वारा पाँच घृताहुतिओं का विधान किया गया है, परन्तु संस्कारविधि के अन्दर किसी भी संस्कार के विधिप्रकरण में यहाँ तक कि गृहाश्रम के दैनिक अग्निहोत्र की विधि में भी इनका वर्णन नहीं किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में दैनिक अग्निहोत्र की सोलह आहुतियाँ बतलाई हैं। वही सोलह आहुति गृहाश्रम प्रकरण में दिये गये दैनिक अग्निहोत्र विधि में दी गई हैं।

३. यदि पांच घृताहुतियाँ दी जाती हैं तो ५+१६=२१ आहुतियाँ हो जाती हैं।

कृपा करके समाधान करें कि पांच घृताहुतियाँ सही विधि के अनुसार दी जानी चाहिएं अथवा नहीं।

स्वामी मोहनदेव-प्रधान, महर्षि दयानन्द वैदिक साधु आश्रम, सरकूलर रोड, जघीना दरवाजा, भरतपुर (राज.)

समाधान- यज्ञ के सन्दर्भ में दो विधियां उपलब्ध हैं- १. श्रौत २. स्मार्त्त। दोनों में अन्तर है। अग्निहोत्र श्रौतकर्म है। औपासन होम, वैश्वदेवकर्म तथा संस्कार स्मार्त्तकर्म हैं। यज्ञ-अग्नि प्रज्वलित कर कर्म सम्पादन दोनों में समान दिखाई देता है, किन्तु दोनों में प्रक्रिया भिन्न-भिन्न प्रकार से सम्पादित करनी होती है। श्रौतकर्म की अग्नि पृथक् है, जिसे श्रौताग्नि के नाम से जाना जाता है। स्मार्त्तकर्म की अग्नि पृथक् है और इसे स्मार्त्त, आवसथ्य, शालाग्नि कहा जाता है। विवाह आदि संस्कार तथा वैश्वदेवकर्म (बलिवैश्वदेव आदि) इसी स्मार्त्त अग्नि पर सम्पन्न किए जाते हैं।

श्रौत विधि के अनुसार अग्निहोत्र से पूर्व आधान/अग्न्याधान कर्म कर्त्तव्य है, क्योंकि सभी प्रकार के यज्ञकर्म सम्पादनार्थ अग्नि स्थापन अनिवार्य है। इसमें व्यक्ति अपने घर/यज्ञशाला में सविधि अग्नि स्थापन करता है। यह आधान अपने आप में पूर्ण कर्म है। हविर्यज्ञों में इसे प्रथम स्थान प्राप्त है। तद्यथा- **'अग्न्याधानम्, अग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, आग्रयणं, निरूढपशुबन्धः, सौत्रामणी इति।'** यदि कभी यह अग्नि शान्त हो जाए, तब पुनः किए जाने वाले इस अग्नि स्थापन कर्म को पुनराधान अथवा पुनराधेय कहते हैं।

अग्नि स्थापन/आधान के पश्चात् यज्ञ के समय यज्ञशालास्थ उस स्थान, जहाँ पूर्व में अग्निस्थापन किया था (इसकी संज्ञा 'गार्हपत्यखर' है।) से अग्नि उद्धरण कर उस उद्धृत अग्नि को 'आहवनीय खर' में स्थापित करते हैं- **'पुरा छायानां संसर्गाद् गार्हपत्यादाहवनीयमुद्धरति'** -शां. श्रौ. २.६.२ 'आहवनीयखर' में स्थापित अग्नि पर ही अग्निहोत्र आदि श्रौत यज्ञ सम्पन्न होते हैं। इसलिए अग्निहोत्र आदि कर्मों या अन्य श्रौत यज्ञों के समय पुनः अग्न्याधान की प्रक्रिया नहीं की जाती है, क्योंकि यह पूर्व से ही आहित/स्थापित है। समदाधान भी इसी आधान का अंगभूत कर्म है। **'अदितेऽनुमन्यस्व...देव सवितः'** जलसिंचन भी इसी का अंग है। ये विधियाँ, इनमें प्रयुक्त मन्त्र, शाखा भेद से भिन्न-भिन्न होना सम्भव है। तद्यथा-

क- 'मध्ये निगृह्योद्गृह्योपविश्य समिधमादधा ''त्यग्निज्योतिषं त्वा वायुमतीं प्राणवतीं स्वर्ग्यां स्वर्ग्यायोपदधामि भास्वती''-मिति.' का. श्रौ. ४.१४.१३

ख- 'अमृताहुतिममृतायां जुहोम्यग्निं पृथिव्याममृतस्य योनौ। तयाऽनन्तं काममहं जयानि प्रजापतिः प्रथमोऽयं जिगायाग्नावग्निः स्वाहेति निदध्यादादित्यमभिमुखः' - आश्व. श्रौ. २.२.; शां. श्रौ. २.६.७

यहाँ यजुर्वेदीय कात्यायन तथा ऋग्वेदीय आश्वलायन तथा शांखायन में आहवनीय में अग्निस्थापन का मन्त्र पृथक् पृथक् है।

उपरिवर्णित सन्दर्भ को दृष्टिगत रखने पर आपकी शङ्का के लिए अवसर ही नहीं रहता। आधान/अग्न्याधान विधि का परिज्ञान न होने के कारण तथा आधान एवं अग्निहोत्र दोनों की भिन्न-भिन्न विधियों को एक समझने पर इस प्रकार के प्रश्न

उत्पन्न होते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने श्रौत/स्मार्त्त किसी एक विधि का आश्रयण न कर यज्ञीय विधि को सर्वजन ग्राह्य बनाने की दृष्टि से यथेष्ट परिवर्तन/परिवर्धन कर उसे श्रौत की अपेक्षा सरल बना दिया है।

श्रौत अग्निहोत्र में आहवनीय अग्नि पर एक समय में सायं/प्रातः मात्र दो आहुति देनी होती हैं। दूसरे समय भी मात्र दो आहुति दी जाती हैं। तद्यथा–

क–'**प्रदीप्तामभिजुहो''त्यग्निर्ज्योति''** (३.९) **रिति ''सजूरिति''** (३.९) **वा'** –का. श्रौ. ४.१४.१४

ख–'**अग्निशब्दे सूर्यः, रात्र्युषसान्हेति वा, ''ज्योतिः सूर्य''** (३.८) **इति वा प्रातः'** –का. श्रौ. ४.१५.८–१०

इस प्रकार मात्र चार आहुतियों में एक दिन का (दोनों समय का) अग्निहोत्र पूर्ण हो जाता है। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि अग्निहोत्र सायं प्रारम्भ होकर प्रातः पूर्ण होता है। दोनों समय का हव्य भी एक ही होता है। उसकी आहुति का हव्य भी 'पयः' दुग्ध है। तद्यथा– '**पयसा नित्यहोमः**' आश्व. श्रौ. २.२.३, शांखायन श्रौ. २.७.४ –'**पयो यवागूर्दध्याज्यमित्यग्निहोत्रहवींषि**' में पय, यवागू, दधि तथा घृत को हव्यरूप में स्वीकार किया है। ये दो आहुतियाँ तो 'गार्हयत्यखर' से लाई जलती हुई अग्नि पर जो आहवनीय खर में स्थापित की गई है पर बिना किसी समिधा का आधान किए दी जा सकती हैं। श्रौत अग्निहोत्र में पूर्णाहुति भी नहीं होती है।

महर्षि ने यज्ञ के प्रवृत्तिनिमित्त को ''**अग्नये परमेश्वराय जलवायुशुद्धिकरणाय वा होत्रं हवनं यस्मिन् कर्मणि तदग्निहोत्रम्**'' शब्दों में स्पष्ट कर दिया है। एक समय में दुग्ध की मात्र दो आहुति से उद्देश्य पूर्ण होना सम्भव नहीं है। इसलिए महर्षि ने आहुतियों की संख्या बढ़ाकर एक समय के लिए सोलह कर दिया है। दूसरे समय भी सोलह आहुति होंगी। इस प्रकार एक दिन (दोनों समय) में श्रौत चार आहुति के स्थान पर बत्तीस आहुति हो जाती हैं। साथ ही हव्य के रूप में महर्षि ने चार प्रकार के पदार्थों का विधान किया है। तद्यथा–

(i) सुगन्धित– कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेतचन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि।

(ii) पुष्टिकारक– घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि।

(iii) मिष्ट– शक्कर, सहत (शहद), छुवारे, दाख आदि।

(iv) रोगनाशक– सोमलता अर्थात् गिलोय आदि।

महर्षि विहित उक्त हव्य की सोलह आहुतियाँ श्रौत अग्निहोत्र की मात्र दो आहुतियों की तरह अंगारे अथवा जलती हुई एक समिधा पर सम्भव नहीं हैं। अतः महर्षि ने समग्र विधि का निर्देश किया है। एतदनुसार अग्निहोत्र के लिए अग्निस्थापन–अग्न्याधान (वह भी इस प्रकार जिस पर सोलह आहुतियाँ दी जा सकें) के विधिभाग में ही तीन समिधाओं का आधान तथा उस अग्नि को अग्रिम सोलह आहुति प्रदान योग्य बनाने के लिए '**अयन्त इध्म आत्मा...**' इस मन्त्र से पाँच घृत की आहुतियों का विधान किया है। ये पाँच आहुतियाँ अग्नि समिन्धनार्थ हैं। अतः महर्षि ने इन्हें आधान भाग में विहित कर सोलह से पृथक् कर दिया है। किसी भी संस्कार में इनका पृथक् उल्लेख अपेक्षित ही नहीं है। अग्न्याधान का कथन करने मात्र से उसका अंगभूत होने के कारण यह स्वतः प्राप्त ही हैं।

महर्षि जहाँ कहीं भी सोलह का विधान करते हैं, ये उनसे पृथक् रहेंगी ही, आधान का अंग होने के कारण। दैनिक अग्निहोत्र में एक समय की आहुति सोलह ही रह जाती हैं। आपने इन पाँच को जोड़कर ५+१६=२१ संख्या दी है, वह उचित नहीं है। गिन ही रहे थे, तो पूर्णाहूति की तीन क्यों छोड़ दीं? आप पूर्णाहुति की तीन आहुति देते ही हैं, तब आपको ५+१६+३=२४ कहना चाहिए था, किन्तु आपने उन्हें गणना से बाहर कर दिया और प्रश्न उठाया केवल '**अयन्त इध्म आत्मा...**' पर।

यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि महर्षि एक सरल, अर्थवत्तायुक्त विधि दे रहे हैं। श्रौतविधियों को समझने वाले व्यक्ति की दृष्टि में ये प्रश्न ही नहीं है और न ही यह प्रश्न कि यहाँ कहा, वहाँ नहीं कहा। सामान्य विधि या परिभाषा सम्पूर्ण ग्रन्थ में एक बार कह देने मात्र से यथावकाश स्वतः उपस्थित हो जाती है। इसलिए यज्ञ अथवा संस्कार हेतु जहाँ भी अग्न्याधान किया जाएगा, वहाँ अग्न्याधान का अंग होने से ये पाँच आहुतियाँ दी जाएंगी।

उड़ियो पंख पसार

कन्हैयालाल आर्य

मनुष्य बहुत चतुर प्राणी है। वह अपने गणित से सभी आविष्कार कर लेता है। किसी ने कहा है-

''अब हम सांची कहत है उड़ियो पंख पसार'' हम आप से सत्य ही सत्य कह देते हैं, सौ टके सत्य बात कहते हैं और सत्य बात यह है- उड़ियो पंख पसार! अपने भीतर के आकाश में पंखों को पसारो और उड़ो। कथा कहानियों में मत उलझे रहो। यह उधार का ज्ञान काम नहीं आयेगा। अपने ही पंखों को फैलाओ। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम उड़े, योगीराज श्रीकृष्ण उड़े, युगप्रर्वतक महर्षि दयानन्द सरस्वती उड़े, महावीर, बुद्ध उड़े। तुम्हें भी उड़ना होगा। अपने ही पंख काम आयेंगे।

उड़ियो पंख पसार। पसारो अपने पंखों को। साहस जुटाओ। भय तो लगता है। भीतर जाने में भय लगता है, क्योंकि वहाँ भीतर हम बिल्कुल अकेले हो जाते हैं। बाहर तो अपने हैं, प्रियजन हैं, बन्धु-बान्धव हैं, मित्र हैं, पति-पत्नी, पुत्र-पिता सब हैं। बाहर तो सारा संसार है, परन्तु भीतर तो इनमें से कोई भी नहीं है। अकेले होने से हम भयभीत हैं। अकेले होने में बड़ी घबराहट होती है, कहीं डूब न जायें, कहीं सहारे टूट न जायें। अत: हम दूसरों को पकड़े रहते हैं। पति पत्नियों को और पत्नियाँ पतियों को पकड़े हुए हैं और एक जन्म में ही नहीं सात-सात जन्मों की बात की जाती है। जो कल तक जन्मों-जन्मों की बात किया करते थे, वे आज सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए न्यायालयों में खड़े मिलते हैं।

लोग सम्बन्ध बना रहे हैं, अमरता के जाल गूंथ रहे हैं। एक-दूसरे को झूठे आश्वासन दे रहे हैं, भीतर जायेंगे तो अकेले हो जायेंगे। यह अकेलेपन का भय हमें सता रहा है। जब कोई पहली बार भीतर प्रवेश करता है तो उन्हें लगता है कि अन्दर अन्धकार ही अन्धकार है, प्रकाश नहीं है। धीरे-धीरे अन्धकार को खोदते-खोदते प्रकाश मिल ही जाता है। हमने जन्मों-जन्मों तक तो अन्धकार एकत्रित कर रखा है। उसकी परतें इतनी गहरी हो गईं, उनकी खुदाई भी तो गहरी करनी पड़ेगी। जैसे कोई व्यक्ति कुआँ खोदता है, तो एकदम जल की प्राप्ति तो नहीं हो जाती। यद्यपि भूमि में जल तो है, परन्तु पहले कंकड़-पत्थर आयेंगे, कूड़ा-कचरा आयेगा, फिर गीली मिट्टी आयेगी, फिर गन्दा पानी आयेगा। ऐसे खोदते जाओ, खोदते जाओ, एक दिन निर्मल झरना उपलब्ध हो जायेगा। ऐसे ही अन्तर की खुदाई करनी होगी।

उतनी प्रतीक्षा नहीं है हमें। हम चाहते हैं कि शीघ्र सारा कार्य सम्पन्न हो जाये। कोई दूसरा ही इस कार्य को कर दे। हम पण्डितों और पुरोहितों के जाल में पड़े हुए हैं। हम सोचते हैं कि ये हमारे लिए प्रार्थना कर लें, ये हमारे लिये पूजा कर लें।

मेरे पास लोग आकर कहते हैं, ''हमारे लिए आप परमात्मा से प्रार्थना करें।'' मैंने कहा, ''श्रीमान् जी, यह भी खूब रही। पाप करो तुम। प्रार्थना करूँ मैं। पाप करते समय मुझसे क्यों नहीं पूछते? अरे भाई! मेरा खाया मेरे शरीर को पुष्ट करेगा। मेरी की गई प्रार्थना मेरे जीवन में सुधार लायेगी। यह प्रार्थना कोई व्यापारिक लेन-देन नहीं है। मेरी प्रार्थना मेरे काम आयेगी, तुम्हारे नहीं। इसलिए अपनी यात्रा तुम्हें स्वयं ही करनी होगी।''

विचारिये! तुम कब से भीतर नहीं गये। स्मरण है। विचारोगे तो पता चलेगा कि कभी प्रयास ही नहीं किया। जब प्रयास ही नहीं किया तो भय तो अवश्य लगेगा।

कई सज्जन मेरे पास आते हैं, बस उनके मुखसे एक ही स्वर निकलता है- ''आप का आशीर्वाद चाहिये।'' मैं उनसे कहता हूँ, ''भई! केवल मेरे आशीर्वाद से कुछ नहीं बनेगा, ध्यान तुम्हें स्वयं करना होगा, प्रार्थना तुम्हें स्वयं करनी होगी।'' मैंने उनसे कहा कि यदि मुझ पर इतना विश्वास है तो तुम ऐसा करो, दुकान बन्द करो, धन्धा भी बन्द करो फिर क्या केवल मेरे आशीर्वाद से बात बन जायेगी। तब वे असमजंस में पड़ जाते हैं और कहते हैं, ''यह बहुत कठिन है।'' यदि तुम स्वयं कुछ नहीं करोगे तो केवल आशीर्वाद से कुछ नहीं बनेगा। वास्तविकता यह है कि कोई श्रम तो नहीं करना चाहता। केवल आशीर्वाद

और गुरु कृपा का सहारा लेना चाहते हैं। वे परमात्मा को पाना तो चाहते हैं, परन्तु इसके लिये पुरुषार्थ नहीं करना चाहते। सब कुछ नि:शुल्क प्राप्त हो जाये। अरे भाई! स्वयं करना होगा। साधना और ध्यान स्वयं करना होगा। अपने पंख स्वयं उड़ाने होंगे, फड़फड़ाने होंगे। पर यह क्या? तुमने तो कई जन्मों से इन्हें हिलाया ही नहीं। ये तुम्हारे पंख तुम्हारे पास तो हैं, परन्तु उड़ना भूल गये हैं।

प्राय: यह होता है कि जो पक्षी बहुत दिनों तक पिंजड़े में बन्द रह गया, कुछ दिनों के पश्चात् उसे पिंजड़े से बाहर निकालो तो वह उड़ न सकेगा। वह भूल ही जाता है कि पंख उसके पास हैं। यदि उड़ने का प्रयास भी करता है तो सम्भवत: गिर जाता है, फड़फड़ा कर गिर पड़ता है। प्राय: जो तोते पर्याप्त समय तक पिंजड़ों में बन्द रहते हैं, छोड़ दिये जाने पर वे या तो शीघ्र ही मृत्यु का शिकार हो जाते हैं या कोई बिल्ली उन्हें खा जाती है या चील झपट्टा मार देती है। वे अपने को सुरक्षित नहीं रख सकते। वे भूल जाते हैं कि उनके पास पंख भी हैं। विस्मरण का बड़ा पर्दा उनके बीच में आ जाता है।

यदि खोल सको पंख अपने, उड़ सको अपने स्वभाव में, उड़ सको अपने स्वरूप में, तो हो जाओगे दु:ख के पार, हो जाओगे इस शरीर के सरोवर के पार। यह भवसागर पार हो जायेगा। ये प्यारे बहुमूल्य वचन हैं।

मैं तुम्हें अर्थ समझा दूँगा, परन्तु मेरा अर्थ मेरा अनुभव होगा। तुम सुन लोगे, शब्द तुम्हारे कान तक पहुँच जायेंगे, परन्तु पंख तो तुम्हें अपने ही खोलने होंगे। तुम्हें यात्रा तो अपनी ही करनी पड़ेगी। मैं संकेत दे सकता हूँ, इंगित कर सकता हूँ। कैसे पंख फड़फड़ाओगे, कैसे पहला पग आगे बढ़ाओगे।

ये सब सूचनायें तुम्हें दी जा सकती हैं, परन्तु यात्रा तो तुम्हें स्वयं ही करनी पड़ेगी। कोई दूसरा तुम्हारे लिये यात्रा नहीं कर सकता प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा तक स्वयं ही चलकर पहुँचना होता है यह यात्रा उधार नहीं हो सकती।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री

दार्शनिक दयानन्द!

डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'

भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय के अधीन कार्यरत संस्था- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने NET परीक्षा के लिए निर्धारित भारतीय दर्शनशास्त्र (इकाई-V समकालीन भारतीय दार्शनिक, १९वीं-२०वीं शताब्दी) के पाठ्यक्रम में महर्षि दयानन्द को स्थान नहीं दिया। अर्थात् वर्तमान सरकार महर्षि को दार्शनिक ही नहीं मानती। जिज्ञासा होती है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वास्तव में दार्शनिक कौन है? वह जिसे सरकार मान ले या कि जिसे विद्वान् दार्शनिक मानते हों? या फिर दार्शनिक होने या मानने, न मानने के अतिरिक्त कोई अन्य कारण है जिससे महर्षि को दर्शनिकों की उक्त सूची से बाहर रखा गया है। इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि किसी राजनीति के एजेण्डे या द्वेषभाव के कारण महर्षि को दार्शनिक न माना गया हो।

यह भारत के तथाकथित बुद्धिजीवियों का दुर्भाग्य ही है कि वे सत्य के मूल्यांकन और प्रतिष्ठापन में स्वतन्त्रता से पूर्व और पश्चात् भी चूक करते रहे हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व मुसलमान, ईसाई, पौराणिक और कम्युनिस्ट महर्षि की विचारधारा के विरुद्ध विषवमन करते रहे, गांधी जी के नेतृत्व में कुछ कांग्रेसी भी। अंग्रेज सरकार के निशाने पर भी महर्षि और उनके अनुयायी-आर्यसमाजी रहे और अब स्वतन्त्रता के बाद भी सत्ताधारी कांग्रेस के वामपन्थियों के साथ बौद्धिक गठजोड़ ने प्राचीन आर्ष परम्परा के ध्वजवाहक महर्षि का विरोध करने की ठानी हुई है। अन्य अनेक संगठन भी दुर्भावना या अज्ञान के कारण ऋषि के सिद्धान्तों का विरोध करते रहे हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व व पश्चात् चूँकि कांग्रेस में अनेक विख्यात आर्यसमाजी नेता थे, जिनके कारण महर्षि के अधिकांश मन्तव्यों पर सीधे प्रहार नहीं किया गया, किन्तु जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (JNU), अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (AMU) इत्यादि के बौद्धिकों के कांग्रेसी गठजोड़ ने देश की शिक्षा-पद्धति और विशेषत: भारतीय इतिहास को बहुत विकृत किया। मुस्लिम शिक्षा-मन्त्रियों, विशेषत: श्री नूरुल हसन का इसमें बहुत योगदान रहा।

महर्षि ने अपने समय में बहुत प्रयत्न किया था कि उनके द्वारा किए गए विशुद्ध आर्ष पद्धति के वेदभाष्यों को विश्वविद्यालयीय पाठ्यक्रमों में स्थान मिले, परन्तु स्वयं वेदभाष्यपद्धति से अनजान पौराणिकों और उनको परोक्षरूप से प्रश्रय देनेवाली अंग्रेज सरकार ने महर्षि के प्रयासों को सफल न होने दिया। लालबुझक्कड़-टाइप के अंग्रेजीदाँ विशेषज्ञ तक महर्षि के वेदभाष्य पर सम्मति देने के लिए लगाए गए। पुस्तकों के अतिरिक्त 'परोपकारी' के पुराने अंकों में भी हम यह सब इतिहास पढ़ते आए हैं।

अस्तु, स्वतन्त्रता के पश्चात् गैर-कांग्रेसी गठबन्धनों की सरकारों के काल में भी महर्षि के मन्तव्यों के समर्थन या उनके प्रचार-प्रसार के लिए कुछ विशेष किया गया, ऐसा नहीं प्रतीत होता। अब राष्ट्रवादी कही जानेवाली एक सरकार के कार्यकाल में महर्षि को समकालीन दर्शनिकों की सूची से भी बाहर कर दिया गया है। इसका कारण केन्द्र सरकार और उसके स्तम्भ-भूत सहयोगी संगठन भली प्रकार जानते होंगे। मैं उन संगठनों के नाम यहाँ देकर व्यर्थ विवाद नहीं खड़ा करना चाहता।

उक्त विवादास्पद पाठ्यक्रम का निर्धारण किसी व्यक्तिविशेष ने नहीं किया होगा, इसके लिए एकाधिक विशेषज्ञों की समिति रही होगी। अस्तु, विशेषज्ञ रहा हो या समिति; वे सभी भारतीय परम्परा, इतिहास, दर्शन और शास्त्रीय ज्ञान से अपरिचित रहे होंगे, यह निश्चित है, अन्यथा महर्षि के अद्वितीय व्यक्तित्व व कृतित्व से परिचित व्यक्ति तो ऐसा कर ही नहीं सकता था। वैसे, हमारा यह मानना है कि पौराणिक, अंग्रेज सरकार, ईसाई, मुसलमान इत्यादि मिलकर भी जैसे महर्षि के विचारों की धारा को अवरुद्ध नहीं कर सके वैसे ही ये नौसिखिए, पक्षपाती और पूर्वाग्रहग्रस्त प्रोफेसर भी नहीं रोक सकेंगे। पुनरपि सत्ता या शासन वह होता है जो देश के नागरिकों की भावनाओं का सत्य के आधार पर-पक्षपातरहित होकर सम्मान करे। यदि शासन ऐसा नहीं करता, तो उसे झिंझोड़कर जगाना सचेत, जागरूक और विवेकशील राष्ट्रवादी नागरिकों का कर्त्तव्य

बन जाता है। सरकार नागरिकों के मतों-वोटों से बनती है। वोट लेना होता है, तब आर्यसमाज और महर्षि हिन्दुत्व के रक्षक नज़र आते हैं, बड़ी-बड़ी चुनावी सभाओं में इनका प्रशस्तिगान होता है और चुने जाने के बाद हिन्दूधर्म की रक्षक इस वीर-भुजा को काटने का प्रयास किया जाए, तो यह उचित नहीं।

पुन: वि.वि. अनुदान आयोग के उक्त पाठ्यक्रम के विषय पर आते हैं। लगभग ४२ वर्ष पूर्व जब मैंने बी.ए. में दर्शनशास्त्र पढ़ा था, तब समकालीन दार्शनिकों में महर्षि दयानन्द पाठ्यक्रम में सम्मिलित थे, पढ़ाए जाते थे। अब क्या हुआ? क्या मानदण्ड बदल गए? या पहले वाले विशेषज्ञ ज्ञानी नहीं थे?

वि.वि.अ. आयोग के प्रस्तुत पाठ्यक्रम पर विचार करें, तो उसमें जिनको महान् समकालीन दार्शनिक मानकर पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है, उनके नाम हैं- स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, महर्षि अरविन्द, महात्मा ज्योतिबा फुले, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, दीनदयाल उपाध्याय, सन्तकवि तिरुवल्लुवर, अल्लामा इक़बाल, के.सी. भट्टाचार्य, डॉ. एस. राधाकृष्णन्, जे. कृष्णमूर्ति, श्री नारायण गुरु और एम.एन. राय।

मैं इन विख्यात विचारकों, लेखकों, राजनेताओं और साम्प्रदायिक चिन्तकों के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में इस लेख में कुछ नहीं लिखना चाहता और न उनके व्यक्तित्व व विचारों की तुलना महर्षि के विराट् व्यक्तित्व, विचारों व कार्यों से करना चाहता हूँ, परन्तु इन नामों के साथ पढ़ाए जानेवाले इनके जिन दार्शनिक विचारों का उल्लेख सूची में है वह सूची ही अत्यन्त अविचारित और हास्यास्पद तक प्रतीत होती है। वि.वि.अ. आयोग से कोई पूछे कि समकालीन भारतीय दार्शनिकों (उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध से बीसवीं शती) में ईसापूर्व पैदा हुए तिरुवल्लुवर जी का नाम कैसे आ गया? यदि उन्हीं का नाम रखना था तो लगभग दो हजार वर्ष के अन्तराल में तो भारत में अनेक दार्शनिक उत्पन्न हुए हैं, उनका नाम क्यों नहीं रखा गया? तुष्टीकरण की नीति और अज्ञान है यह! यह वि.वि.अ. आयोग देश के विश्वविद्यालयों को दिशा देने का कार्य कर रहा है। जब विशेषज्ञ ही अधकचरे ज्ञान वाले होंगे, तो इनके द्वारा निर्मित पाठ्यक्रम कैसा होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

पाठकों को जानकर आश्चर्य होगा कि उपरिलिखित कुछ कथित दार्शनिकों के जिन विचारों की विशिष्टता के लिए उन्हें पढ़ाया जाएगा, वे विषय भी कम हास्यास्पद नहीं हैं। उदाहरण के लिए, मौलाना अबुलकलाम आज़ाद का 'मानवतावाद' पढ़ाया जाएगा। समिति को सन्त तिरुवल्लुवर के विचारों का विवरण ही ज्ञात नहीं रहा होगा, तो उसने लिख दिया कि उनका पूरा ग्रन्थ 'तिरुक्कुरल' ही पढ़ाया जाएगा।

मेरा प्रमाण और तथ्यपूर्वक यह निवेदन है कि उक्त दार्शनिकों के जो विचार पाठ्यक्रम में रखे गए हैं, उनमें से अधिकांश विचार महर्षि दयानन्द के दर्शन में समेकित रूप में उपस्थित हैं। जैसे कि सार्वभौमिक धर्म, धार्मिक अनुष्ठान, समग्रयोग, आत्मा, ईश्वर, मानव, बुद्धि, मानव धर्म, राष्ट्रवाद की अवधारणा, स्वराज, दर्शन की अवधारणा, जीवन का आदर्शवादी दृष्टिकोण, सत्य, अहिंसा, जातिवाद का उच्छेदन, समग्र मानववाद, पुरुषार्थ, आध्यात्मिक स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता, एकधर्म, एक ईश्वर, जाति-व्यवस्था इत्यादि।

इन सब विषयों पर महर्षि ने अपने विचार यत्किंचित् परिवर्तित रूप में अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किए हैं। साथ ही, अपने विचारों को शास्त्र, प्रमाण, व तर्कों से सम्पुष्ट भी किया है। यह महर्षि का वैशिष्ट्य है।

सामान्यत: दार्शनिक वह होता है, जो जगत्, आत्मा, परमात्मा, समाज इत्यादि महत्त्वपूर्ण प्रत्ययों के अस्तित्व, क्रियाकलाप, गति, सम्भावित उत्पत्ति या प्रकटन पर किसी आधार पर या स्वतन्त्र चिन्तन कर परिणाम या विचार प्रस्तुत करता है, इनसे सम्बन्धित विभिन्न सूचनाओं, पक्षों का सम्यक् ज्ञान भी रखता है। दर्शन की कुछ अन्य स्वतन्त्र शाखाएँ भी कही गई हैं- धर्मदर्शन, समाजदर्शन, इतिहास दर्शन इत्यादि। व्यापक परिप्रेक्ष्य में इन सबके ज्ञाता और विचारक भी दार्शनिक के रूप में जाने जाते हैं। महर्षि में ये सारे गुण विद्यमान थे, पुन: वे दार्शनिक क्यों नहीं कहे जा सकते?

अनेकत्र यह कहा जाता है कि महर्षि ने नया कुछ

नहीं कहा, उन्होंने प्राचीन ऋषियों, वेदादि ग्रन्थों की बातों को ही दुहराया है, अतः वे मौलिक नहीं कहे जा सकते। यहाँ हमारा कहना है कि यह ऋषि की विनम्रता और सत्यनिष्ठा है, अन्यथा यदि दयानन्द प्राचीन ऋषियों की ही बात करते हैं तो ऋषियों की बात को मानने का दम्भ तो पौराणिक भी करते हैं, और यदि दयानन्द ने भी उन्हीं ऋषियों की बात कही है, तो पौराणिक मान क्यों नहीं लेते? और यदि कहो कि दयानन्द ने ऋषियों और वेदों की बातों की अपने ढंग से व्याख्या की है, तो भी नवीन व्याख्याकार होने से वे मौलिक हुए, दार्शनिक हुए। परम्परागत अन्य लेखकों के ग्रन्थ-गीता, उपनिषद् और वेदान्त की अपने ढंग से टीकाएँ/व्याख्याएँ लिखनेवाले आद्य शंकराचार्य यदि दार्शनिक हैं, तो अपूर्व वेदभाष्यकर्त्ता दयानन्द दार्शनिक क्यों नहीं? विभिन्न मत-मतान्तरों की वैदिक धर्म के परिप्रेक्ष्य में अभूतपूर्व समालोचना करनेवाले महर्षि दार्शनिकों के दार्शनिक सिद्ध होते हैं।

अब हम आगे कुछ बिन्दुओं में दयानन्द का वैशिष्ट्य दर्शाने का प्रयत्न करते हैं-

१. महाभारतकाल के बाद वे पहले ऐसे विचारक है, जिन्होंने वैदिक षड्दर्शन-समन्वय का सिद्धान्त प्रबल तथ्यों व तर्कों के आधार पर प्रस्तुत किया।

२. जिन्होंने सांख्य के रचयिता महर्षि कपिल को नास्तिकों की श्रेणी से निकालकर आस्तिकों की श्रेणी में खड़ा किया। जिन्होंने **सांख्यतत्त्व कौमुदी** और **सांख्यकारिका** के स्थान पर सांख्यसूत्रों को वरीयता दी। सांख्यसूत्रों के भाष्यकार विज्ञानभिक्षु के अतिरिक्त और किसने ऐसा किया? कालान्तर में महर्षि के अनुयायी विचारक आचार्य उदयवीर शास्त्री जी ने सांख्यसूत्रों के प्रक्षिप्त अंशों की परीक्षा की और प्रमाणपूर्वक मूल सूत्रों को प्रस्तुत किया।

३. जिन्होंने **शांकर वेदान्त** को **नवीन वेदान्त** कहा और वेदोपनिषदादि शास्त्रों के आधार पर '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**' के सिद्धान्त का प्रबल खण्डन करते हुए वेदोक्त और वेदव्यास-अभिप्रेत **त्रैतवाद** की स्थापना की।

४. जिन्होंने **स्त्रीशूद्रौ नाधीयतामिति** का प्रबल खण्डन करते हुए मानवमात्र को वेद-ग्रन्थ सुलभ कराये।

५. जिन्होंने कहा कि **धर्म एक है** अन्य सब तथाकथित **धर्म** मत-सम्प्रदाय मात्र हैं।

६. जिन्होंने वेद के **स्वतःप्रमाण** होने का प्रबल समर्थन किया। यद्यपि वैदिक परम्परा भी यही मानती आ रही थी, परन्तु ढोंगी पौराणिकों ने वेद को जनता के अध्ययन से दूर कर अन्य अनेक मनुष्यकृत ग्रन्थों का प्रचलन वेद के स्थान पर कर दिया। चतुर्वेद संहिताओं के अपौरुषेय होने के सिद्धान्त को महर्षि ने पुनः प्रतिष्ठापित किया। अन्यथा, ऋषियों द्वारा रचित ब्राह्मणग्रन्थों को भी **वेद** ही माना जाने लगा था। आश्चर्य है कि मध्यकाल के बड़े दार्शनिकों-आचार्य शंकर इत्यादि ने एक भी वेदसंहिता का मन्त्र अपनी कृतियों में उद्धृत तक नहीं किया, किन्तु वह वैदिकों के सिरमौर हैं।

७. जिन्होंने धर्म, दर्शन, योग, वेद, वैदिक उपासना से युक्त और समकालीन प्रचलित मत-मतान्तरों की सटीक समालोचनापूर्वक अद्भुत ग्रन्थ प्रदान किया-**सत्यार्थप्रकाश।** वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का जीवन्त प्रमाण है यह **विश्वधर्मकोश।**

८. जिन्होंने आधुनिक काल में सर्वप्रथम राष्ट्र और मनुष्य की स्वतन्त्रता को धर्म से जोड़ा।

९. जो आधुनिक काल में '**स्वराज्य**' शब्द के प्रथम और प्रखर प्रचारक थे।

१०. **गोरक्षा** को जिन्होंने अर्थ-नीति और मानवतावाद से जोड़ा। **गोकरुणानिधि** इस सन्दर्भ में विशेषतः द्रष्टव्य है।

११. गो-रक्षा को एक संस्थागत रूप देकर जिन्होंने गोशालाओं के निर्माण की प्रेरणा दी और '**गोकृष्यादि-रक्षिणी सभा**' की स्थापना की।

१२. महाभारतकाल के पश्चात् जो प्रथम मन्त्रार्थ-द्रष्टा ऋषि हुए।

१३. जिनकी **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** के महत्त्व को जानकर मैक्समूलर जैसा पाश्चात्य विद्वान् लिखता है-

''...तमाम संस्कृत साहित्य को, जो ऋग्वेद से प्रारम्भ होता है और दयानन्द की '**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**' पर समाप्त होता है।'' इत्यादि।

१४. एक ऐसे समाज (आर्यसमाज) की स्थापना की प्रेरणा करना, जो समेकित रूप से धर्म, दर्शन, योगसाधना,

राष्ट्रवाद, समाजसुधार, (गुरुकुलीय) शिक्षा-व्यवस्था, एक धर्म, एक भाषा, एक मानवजाति, एक ईश्वर, धार्मिक राजनीति, अनाथालय, गोशाला, नारी-शिक्षा व राजनीतिक स्वतन्त्रता इत्यादि का प्रचारक बन इन क्षेत्रों में अग्रणी रहा। हमारे विचार में अन्य किसी संस्था ने ऐसे बहु-आयामी कार्य एक-साथ सम्पन्न नहीं किए। क्या ऐसी विशिष्ट योजनाओं के क्रियान्वयन की दृष्टि रखनेवाला दार्शनिक नहीं?

१५. जिसने सप्रमाण उद्घोष किया कि **वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है** और सभी प्रकार का ज्ञान-विज्ञान उसमें बीज-रूप में उपदिष्ट है। **वेदों में विज्ञान** की खोज आधुनिक काल में महर्षि की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पश्चात् प्रारम्भ हुई।

उक्त दार्शनिकों की सूची में उल्लिखित अनेक दार्शनिक महर्षि को महान् व्यक्तित्व मानते हुए उन्हें अपनी आदराञ्जलि प्रस्तुत कर चुके हैं और वि.वि.अनुदान आयोग के कुपठितों को यह सब दिखाई नहीं देता।

अतः महर्षि दयानन्द जैसे आदर्श एवं उज्ज्वल व्यक्तित्व को समकालीन भारतीय दार्शनिकों की पंक्ति से बाह्य रखना या तो बौद्धिक दिवालियापन है या द्वेषभाव या षड्यन्त्र। कारण जो भी रहा हो, है यह भारतीय संस्कृति, सभ्यता, विचार और परम्परा के विरुद्ध ही, और साथ ही, दर्शनशास्त्र पढ़नेवाले उन छात्रों के साथ अन्याय भी, जो मौलिक चिन्तक, प्रखर विचारक, उत्कृष्ट तर्कशास्त्री, शास्त्रार्थ-समर के अपराजेय महारथी और ऋषि-परम्परा के मूर्तिमान् रूप **दयानन्द** के दर्शन से वंचित रह जाएँगे।

ईश्वर सरकार और वि.वि. अनुदान आयोग के कर्णधारों को सद्बुद्धि दे कि वे महर्षि के व्यक्तित्व व विचारों को समझकर अपनी गलती को शीघ्रातिशीघ्र सुधार लें।

सदस्य परोपकारिणी सभा

(छपते-छपते यह ज्ञात हुआ है कि आर्यसंन्यासी और लोकसभा-सांसद स्वामी सुमेधानन्द जी से केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री ने यह गलती सुधारने का आश्वासन दिया है। तथास्तु- **सम्पादक**)

पृष्ठ संख्या २५ का शेष भाग ...

विश्वविद्यालयों, शिक्षा संस्थाओं व सरकारी कार्यालयों में नागरी-प्रेमियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। नागरी लिपि इसलिये भी राष्ट्रीय स्तर की लिपि है कि इसे लिखनेवालों की संख्या भारतवर्ष में सबसे ज्यादा है। यह लिपि सर्वाधिक सम्पर्क लिपि है, सर्वमान्य है, व्यवस्थित और वैज्ञानिक भी। इस लिपि में सभी भाषाओं की लगभग सभी ध्वनियों को लगभग निकट समता से लिपिबद्ध कर सकते हैं। विभिन्न भाषाओं, उपभाषाओं और बोलियों को सामान्य रूप से देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध किया जा सकता है। विभिन्न भाषा के भावों को देवनागरी लिपि में सहज ही लिखा जा सकता है। इस प्रकार देवनागरी लिपि में राष्ट्रीय एकता को एक सूत्र में बाँधने की अदभुत क्षमता है।

भारतवर्ष में धर्म-जाति, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा भाषा एवं लिपि की अनेकता विद्यमान है, फिर भी युग-युगों के संघर्ष में इस देश की सांस्कृतिक एकता अविच्छिन्न और अक्षुण्ण बनी हुई है। मानवीय दृष्टि से अभिव्यंजना के क्षेत्र में भाषा अपनी सम्पूर्ण विविधता के साथ केवल हमारी भावभूमि की उपज और मानसिक चेतना की उद्भावना मात्र है। वह हमारे लिए वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम है, मानवीय ज्ञानगरिमा की महिमा का अभिव्यंजक साध्य नहीं, साधन है। आधुनिक संघर्षशील युग में भारतीय मनीषियों द्वारा किये गये राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि विषयक चिन्तन क्षेत्र का चित्रण और भारतीय संस्कृति के स्वानुभूत शाश्वत सत्य की अभिव्यंजना हमारा राष्ट्रीय दायित्व और सांस्कृतिक कर्त्तव्य है।

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें। - **महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३**

हिन्दी किसी बैसाखी की मुँहताज नहीं वह पूर्ण भाषा है।

डॉ. प्रभु चौधरी

कोटा हिन्दी सम्मेलन अधिवेशन के अवसर पर डॉ. कर्णसिंह ने अपने मन की पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त की थी ''खेद है जितना समय हिन्दी जगत में परस्पर विरोध में लगाया जाता है यदि वही सहयोग के रूप में लगाया जाय तो विश्व क्या हम चन्द्रमा तक हिन्दी को पहुँचा सकते हैं।'' इसी अवसर पर आपने हिन्दी को स्वावलम्बी एवं पूर्ण भाषा बतलाते हुए यह भी कहा कि ''मॉरीशस फिज़ी, नेपाल, गुयाना जैसे अनेक देशों में हिन्दी के प्रति अगाध प्रेम था।''

हिन्दी की अकूत क्षमता को रेखांकित करते हुए इसी तथ्य को महात्मा गाँधी ने भी स्पष्ट किया था। वह कहते थे- ''यदि हम भारत की सांस्कृतिक एकता और प्राचीन मान्यताओं को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी ही वह कार्य कर सकती है।'' भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति में हिन्दी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी में अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात् करने की क्षमता है। हिन्दी में सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता है। सभी क्षेत्रों में हिन्दी का विशाल शब्दभण्डार है। सामाजिक मुद्दे हों या राजनैतिक, साहित्यिक मुद्दे हों या विधि-विधान सम्बन्धी मुद्दे, आर्थिक हों या वैज्ञानिक मुद्दे, हिन्दी में विचार अभिव्यक्ति की पूरी क्षमता है।

हिन्दी को शब्द-सम्पदा लम्बे विकासक्रम से मिली है। संस्कृत, अपभ्रंश और प्राकृत से हिन्दी संस्कारवान् बनी है। संस्कृत देवभाषा से मिले अभिव्यंजन शिल्प से यह स्पष्ट है कि हिन्दी को विरासत में मिला शब्दभण्डार उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान कर रहा है। जैसा बोला जाता है, हिन्दी में वही लिखा जाता है। यह हिन्दी के सामर्थ्य का द्योतक है, हिन्दी की पूर्णता का परिचायक है। देवभाषा संस्कृत हिन्दी की जननी है। विशाल शब्दभण्डार, व्यवस्थित और वैज्ञानिक लिपि, भाषा-सौष्ठव के आधार, काव्य के रूप, चिन्तन, अभिव्यक्ति की शैली, व्याकरण के आधारभूत सिद्धान्त, सभी कुछ संस्कृत से धरोहर रूप में हिन्दी को सहज प्राप्य रहे हैं। तभी तो सूक्ष्म चिन्तन और अनेक महाभावों की अभिव्यक्ति में जहाँ विश्व की कथित अन्तर्राष्ट्रीय भाषा तक मौन रह जाती है-हिन्दी खरी उतरती है। हिन्दी के इसी गुण के कारण गिल क्राइस्ट ने खड़ी बोली को खरी बोली (प्योर स्टर्लिंग टंग) कहा था।

हिन्दी में दूसरी भाषा के शब्दों को आत्मसात करने की, पचाने की विलक्षण क्षमता है। रेल, स्कूल, स्टेशन, कॉलेज जैसे कितने ही शब्द ऐसे पचा लिये हैं कि इनके बहुवचन या अन्य रूप हिन्दी की प्रकृति के अनुसार चलने लगते हैं। यह सहजता हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में बहुत सहायक सिद्ध हुई है। हिन्दी चिन्तन मनन है, रटन्त नहीं है। इसी कारण इसका भाषाई वैज्ञानिक आधार बहुत ही सहज व व्यावहारिक है। कई क्षेत्रों में तो हिन्दी अपनी जननी संस्कृत से भी दो कदम आगे बढ़ती दिखती है। सानुनासिक चन्द्रबिन्दु से परछाइयाँ, काँकर, साँकर जैसे शब्द हिन्दी में ही सम्भव हैं और घोड़ा, पढ़ा, में, ड, ढ में नीचे की बिन्दी भी हिन्दी की सामर्थ्य और सहजता ही प्रकट करती हैं।

हिन्दी प्रेम, सौहार्द्र, अपनत्व और सुसंस्कारों की जीवन्त भाषा है। इसकी सहभाषाएँ इसकी प्रगति की प्रतीक हैं, इसके व्यापक क्षेत्र की उद्घोषिकाएँ हैं। इसे अपनी सहभाषाओं व उपभाषाओं से सहज स्नेह प्राप्त है, विरोध तो किञ्चित भी नहीं। इनके द्वारा ही हिन्दी का वैशिष्ट्य बढ़ा है। आंचलिक प्रयोगों से हिन्दी प्राणवान् बनी है। इसका सार्वदेशिक स्वरूप निखरा है। हिन्दी का सामर्थ्य ही इसे अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता की ओर अग्रसर कर रहा है। भारत के सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन में विशेष प्रगति परिलक्षित हो रही है। विश्व के ७३ देशों में हिन्दी अपनी पहचान बना चुकी है। विश्व के ११० विश्वविद्यालय और संस्थानों में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन व्यवस्थित है। खेद है कि भारत और भारत से बाहर हिन्दी जानने, मानने, बोलने, लिखनेवालों की और हिन्दी हितैषियों की गणना की ओर कभी सुधीजनों का

ध्यान ही नहीं गया। यदि इन सभी आँकड़ों को मिलाकर देखें तो हिन्दी जाननेवालों की संख्या विश्व में प्रथम स्थान पर होगी।

आज सूचना प्रौद्योगिकी का बहुत शोर है। कम्प्यूटर ने नई सदी में धमाके के साथ प्रवेश किया है। टी.वी., इन्टरनेट आदि ने नई क्रान्ति पैदा की है। भारत के सुधी वैज्ञानिक इस क्षेत्र में भी अपनी उपस्थिति अग्रिम पंक्ति में ही दर्ज कर रहे हैं। कम्प्यूटर पर अपनी देवनागरी लिपि सफलता के ऊँचे झण्डे गाड़ रही है। नये युग में अपनी सार्थकता, सामर्थ्य और पूर्णता के साथ प्रवेश कर चुकी है। नये युग में नई तकनीक में हिन्दी कहीं नहीं पिछड़ रही।

भारत में अंग्रेजी व्यवहार पर ईसाई फादर कामिल बुल्के के शब्द स्मरणीय हैं- ''अंग्रेजी इस देश में दासी या अतिथि के रूप में रह सकती है बहूरानी के रूप में नहीं।'' सत्य भी है, हिन्दी के बिना अपना लोकतन्त्र ही लुंजपुंज है और जैनेन्द्र कुमार तो यह घोषणा कर चुके हैं कि भारत में लोकतन्त्र हिन्दी के बिना चल नहीं सकता। राजर्षि पुरुषोत्तम टण्डन मानते थे कि हिन्दी, स्वराज्य दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का कथन- ''हिन्दी का कोई साम्राज्यवाद नहीं है। उसका केवल प्रेम और सद्भाव ही आधार है। उसमें ही एकता पैदा हो सकती है'' और बोलिनाथन की मान्यता है- ''मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि देश की संस्कृति और एकता की प्रसारक केवल हिन्दी ही हो सकती है।''

हिन्दी ऊँची शान है, साख विदित संसार।
नहिं परावलम्बन, नहीं बैसाखी दरकार।।
बैसाखी दरकार, लड़ी आज़ादी लाई।
देश-एकता, देश-प्रेम की ज्योति जगाई।।
भारतमाता की सुहाग माथे की बिन्दी।
अपने बल बढ़ रही बढ़ेगी अपनी हिन्दी।।

गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' के माध्यम से जो संचेतना के स्वर उभारे वे आज भी हमें ऊर्जस्वित कर रहे है। गणेशशंकर विद्यार्थी भारत के स्वाधीनता संग्राम के जुझारू योद्धा ही नहीं वैभवशाली भारत के भविष्यदृष्टा भी थे। हिन्दी के विषय में उनकी भविष्यवाणी थी- एक दिन हिन्दी एशिया नहीं, विश्व में भारतीय संस्कृति का प्रसार करेगी। विश्व की पंचायत में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी। दिनोंदिन विश्व में हिन्दी के प्रति बढ़ता अनुराग, हिन्दी के इन साधकों के सपनों को साकार करने का भरोसा दिला रहा है।

राष्ट्र की लिपि : देवनागरी

भारत अनेक भाषाओं और बोलियों का एक विशाल देश है। हमारे संविधान में भी भाषाओं की विविधता को स्वीकार करते हुए आठवीं अनुसूची में २२ भाषाओं का उल्लेख किया गया है। भाषाओं की इस विविधता के बावजूद इसमें आश्चर्यजनक भावात्मक एकता विद्यमान है। यही भाषायी एकता राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है, जहाँ चिन्तन और चेतना समान है। इसी एकता की कड़ी है- देवनागरी लिपि। भारत की सभी भाषाओं का साहित्य उनकी अपनी लिपि के साथ देवनागरी लिपि में भी उसे अनूदित करके प्रकाशित किया जाए तो सारे भारतवासी भारतीय साहित्य को सुगमता से समझ सकेंगे। साहित्य की विभिन्न विधाओं की, व्याकरण की तथा युगीन प्रवृत्तियों की महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध हो सकेगी। प्राचीन और मध्य युग में संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की लिपिबद्धता के लिये देवनागरी लिपि का प्रयोग किया गया है। पल्लव, चोल शासकों के अभिलेखों में, मुस्लिम शासकों, महमूद गजनवी, शेरशाह सूरी तथा अकबर अपने सिक्कों पर देवनागरी का प्रयोग करते थे। इसके अतिरिक्त भारत के अधिकांश भागों में डाकटिकटों पर भी देवनागरी का प्रयोग होता था। अत: प्राचीनकाल तथा मध्यकाल में देवनागरी लिपि राष्ट्रीय एकता की प्रतीक रही है।

आधुनिक भारत के निर्माताओं ने भी देवनागरी को ही राष्ट्रीय एकता की कड़ी माना है। आचार्य विनोबा भावे ने इस ओर स्वयं भी प्रयास किये और लोगों को भी नागरी के प्रति प्रेरित किया। नागरी लिपि परिषद् विनोबा भावे जी की सत्प्रेरणा का ही परिणाम है, जहाँ अहिन्दी क्षेत्रों सहित समग्र भारत में नागरी लिपि का प्रचार-प्रसार स्वतन्त्रता के बाद आज तक पर्याप्त मात्रा में हो रहा है। देश के

शेष भाग पृष्ठ संख्या २३ पर ...

महर्षि जन्मतिथि-??

डॉ. वेदपाल

सोशल मीडिया पर महर्षि की जन्मतिथि को लेकर श्री आदित्यमुनि, भोपाल प्रतिदिन स्वपक्षपोषण कर रहे हैं। इससे सामान्य आर्यजन के मन में अनेक प्रश्न उठते हैं। अभी तक महर्षि की जन्मतिथि फाल्गुन बदी १०, संवत् १८८१ तदनुसार १२ फरवरी १८२५ सर्वसम्मत रूप से मानी जा रही है। सार्वदेशिक धर्मार्य सभा का अनुमोदन इसी तिथि को प्राप्त है। इसे डॉ. ज्वलन्त शास्त्री ने ''महर्षि दयानन्द की प्रामाणिक जन्मतिथि'' १०९ पृष्ठीय पुस्तक में सप्रमाण प्रमाणित किया है। डॉ. शास्त्री की पुस्तक का तृतीय संस्करण सन् २०१५ में हिन्डौन से प्रकाशित हुआ है।

जन्मतिथि विषयक दूसरा मत भाद्र शुक्ला नवमी संवत् १८८१ तदनुसार २ सितम्बर १८२४ का है, किन्तु डॉ. ज्वलन्त शास्त्री की पुस्तक का द्वि. सं. २००९ ई. में प्रकाशित होते हुए ही डॉ. भवानीलाल भारतीय (जो सितम्बर मानते थे) ने सितम्बर १८२४ का मत छोड़कर डॉ. ज्वलन्त शास्त्री के मत से लिखित सहमति व्यक्त की थी तथा अपनी सहमति लिखित रूप में दे दी थी जो उसी पुस्तक (द्वि.सं.)में परिशिष्ट रूप में प्रकाशित है।

श्री आदित्यमुनि ने अपना नया मत गुजराती संवत् के आधार पर भाद्र शुक्ला नवमी संवत् १८८१ विक्रमी तदनुसार २० सितम्बर १८२५ का प्रचार प्रारम्भ कर दिया है। सन् २०१८ से पूर्व यह भी २ सितम्बर १८२४ ई. को महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि मानते थे।

इस प्रकार जन्मतिथि विषयक वह मत जिसमें २ सितम्बर १८२४ को कतिपय विद्वान् मान रहे थे- डॉ. भारतीय द्वारा सन् २००९ ई. छोड़ दिया गया तथा २०१८ ई. में श्री आदित्यमुनि ने भी उसे छोड़ दिया, किन्तु अब दो मत रहे-

१. सार्वदेशिक धर्मार्य सभा द्वारा स्वीकृत फाल्गुन बदी १० संवत् १८८१, १२ फरवरी १८२५ ई.।

२. श्री आदित्यमुनि का नया मत भाद्र शुक्ला नवमी, २० सितम्बर १८२५ ई.।

डॉ. ज्वलन्त शास्त्री ने श्री आदित्यमुनि को शास्त्रार्थ की चुनौती दी हुई है। श्री आदित्यमुनि अथवा उनके समर्थक विद्वान् से वह उचित मंच पर शास्त्रार्थ के लिए तैयार हैं।

परोपकारिणी सभा, अजमेर विवाद के सौहार्दपूर्ण समाधान की दृष्टि से शास्त्रार्थ के आयोजन को तैयार थी। श्री आदित्यमुनि ने शास्त्रार्थ हेतु अपनी सहमति नहीं दी। कार्यशाला हेतु भी मुनि जी के पक्ष से किसी भी विद्वान् ने प्रतिभाग हेतु सहमति नहीं दी है।

यदि श्री आदित्यमुनि अथवा २० सितम्बर १८२५ ई. का कोई भी पक्षधर १५ सितम्बर सन् २०२१ तक सभा को लिखित रूप से प्रतिभाग की सूचना नहीं देगा, तब अक्टूबर में सभा शास्त्रार्थ/कार्यशाला का आयोजन नहीं करेगी। उचित तो यही है कि सम्बद्ध विद्वान् युक्तियों एवं प्रमाणों के आधार पर स्वमत स्थापन तथा पर मत का खण्डन करें और अन्य विद्वानों/ऋषिभक्तों द्वारा उठाए जाने वाले प्रश्नों के उत्तर भी दें, किन्तु विद्वानों से शास्त्रार्थ न करके केवल एकपक्षीय स्वमत का प्रचार सोशल मीडिया पर करते रहना समाजहित में नहीं है। यह केवल साधारण जन में बुद्धिभेद का कारण ही बनेगा। अतः प्रशस्य भी नहीं है। क्या श्री आदित्यमुनि स्वयं तथा उनके पक्षपोषक शान्त मन से इस पर विचार करेंगे?

डॉ. वेदपाल
प्रधान, परोपकारिणी सभा।

परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रम

शीतकालीन योग-साधना शिविर	-	**०३ से १० अक्टूबर २०२१**
डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला	-	**०६ अक्टूबर २०२१**
ऋषि मेला	-	**१२, १३, १४ नवम्बर २०२१**

भारत में सारा कार्य भारतीय भाषाओं में हो

डॉ. जगदेव विद्यालङ्कार

भारतवर्ष में कौनसी भाषा में कार्य होना चाहिए? यह प्रश्न उतना ही पुराना है जितनी इस देश की स्वतन्त्रता। स्वतन्त्रता की सारी लड़ाई हिन्दी में लड़ी गयी थी। सर्वप्रथम स्वतन्त्रता का उद्घोष करनेवाले महर्षि दयानन्द ने कहा था- ''हिन्दी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। मेरी आँखें उस दिन को देखने को तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक ही भाषा को समझने और बोलने लगेंगे।'' राजा राममोहन राय, अरविन्द घोष, राजगोपालाचारी जैसे अंग्रेजीपरस्त लोगों ने भी राष्ट्रहित में भारतीय भाषाओं विशेषरूप से हिन्दी की संस्तुति की। राजा राममोहनराय का कथन है- ''हिन्दी में अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता है।'' चक्रवर्ती राजागोपालाचारी ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुये कहा था- ''हिन्दी का शृंगार राष्ट्र के सभी भागों के लोगों ने किया है, वह हमारी राष्ट्रभाषा है।'' योगी अरविन्द का कथन है- ''भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिन्दी-प्रचार के द्वारा एकता स्थापित करनेवाले सच्चे भारतबन्धु हैं।''

किसी भी कार्य को करने का एक उचित समय होता है। स्वतन्त्रता दिवस १५ अगस्त १९४७ का समय ऐसा समय था जब हिन्दी को देश की राजभाषा और सभी प्रान्तीय भाषाओं को अपने-अपने प्रान्त की राजभाषा घोषित किया जाना चाहिये था। उस समय समस्त राष्ट्र देशभक्ति की भावना से सराबोर था, अत: हिन्दी को सिर आँखों पर बिठाने को तैयार था। जिस प्रकार चारों पाण्डव अपने अग्रज युधिष्ठिर के निर्णय को सहर्ष स्वीकार करते थे, उसी प्रकार सभी अहिन्दीभाषी प्रान्त ग्यारह प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी को अपनी सहोदरा अग्रजा को सहर्ष स्वीकार कर लेते और हिन्दी सहज ही समग्र राष्ट्र की सम्पर्क भाषा बन जाती, परन्तु देश के दुर्भाग्य से ऐसा न हो पाया। आज की परिस्थिति में यह कार्य अत्यधिक कठिन है, परन्तु असम्भव नहीं है।

१५ अगस्त १९४७ को हमने अंग्रेजों को तो भगा दिया और उनकी पंगु भाषा अंग्रेजी को कसकर पकड़ लिया और उसका फन्दा बनाकर अपने गले में डाल लिया। तब से लेकर निरन्तर अजगर की भाँति भारतीय भाषाओं के गले में लगा हुआ अंग्रेजी का यह फन्दा कसता ही जा रहा है। यदि यही हाल रहा तो हमारा देश भाषाविहीन देश बनकर रह जायेगा। हमारे अंग्रेजी माध्यम से पढ़नेवाले विद्यार्थी मातृभाषा को लिखने और पढ़ने में असमर्थ से होते जा रहे हैं। बोलने में भी तीस प्रतिशत शब्द अंग्रेजी के ठूँसने में अपनी शान समझते हैं अथवा यह उनकी विवशता है। जिस प्रकार से रातभर पिंजरे में रुका हुआ चूहा पिंजरे को ही अपनी नियति मान बैठता है और उसी को अपना स्थायी निवास समझने लगता है और प्रात:काल पिंजरे का द्वार खुलने पर भी चाव से निकलना नहीं चाहता उसी प्रकार लम्बी पराधीनता भोगने के कारण भारत का नागरिक पराधीनता की मानसिकता से ग्रस्त है। यह मैकॉले का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है। यही कारण है कि कुछ वर्ष पूर्व महाराष्ट्र के एक नवनिर्वाचित विधायक द्वारा हिन्दी में शपथ लेने पर उसकी पिटाई की जाती है और अंग्रेजी में शपथ लेने पर किसी को आपत्ति नहीं होती। मेरे इस भाषा-विश्लेषण का यह अभिप्राय नहीं है कि मैं अंग्रेजी का विरोधी हूँ। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आज अंग्रेजी का वर्चस्व है और फिर भाषा तो कोई भी बुरी नहीं होती, जो जितनी भाषा पढ़ना चाहें पढें, अधिक से अधिक भाषा सीखने में सबको स्वतन्त्रता है। आचार्य विनोबा भावे चौदह भाषाएँ जानते थे। पूर्व प्रधानमन्त्री नरसिंहराव नौ भाषाएँ जानते थे, परन्तु हिन्दी और समस्त भारतीय भाषाओं के अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के बिना हमारी स्वतन्त्रता अधूरी है। स्वभाषा और स्वसंस्कृति के बिना हमारा स्वाभिमान, आत्मसम्मान, स्वावलम्बन प्रभावित होता है।

कुछ अनुदार प्रकृति के लोग अथवा स्वार्थी राजनेता यह शङ्का करते हैं कि हिन्दी से प्रान्तीय भाषाओं को खतरा है। इस सन्दर्भ में अनेक देशभक्त महापुरुषों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। हिन्दी की कवयित्री महादेवी वर्मा

ने कहा था- ''हिन्दी से किसी भी भारतीय भाषा को भय नहीं है, यह सबकी सहोदर है।'' महादेवी वर्मा का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाएँ संस्कृत की पुत्री हैं अतः परस्पर बहनें हैं, अतः प्रान्तीय भाषाओं के विकास में हिन्दी बाधक नहीं अपितु साधक है। नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने भी सच ही कहा था- ''प्रान्तीय ईर्ष्या-द्वेष दूर करने में जितनी सहायता हिन्दी-प्रचार से मिलेगी उतनी किसी दूसरी चीज से नहीं।'' भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन का कथन है- ''हिन्दी की प्रगति से देश की सभी भाषाओं की प्रगति होगी।'' इसी बात को पुष्ट करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने भी कहा था- ''भारत में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिये समान भाषा का दर्जा हिन्दी को ही दिया जा सकता है।'' इन कथनों से यह बात सरलता से सिद्ध हो जाती है कि हिन्दी भाषा से किसी भी प्रान्त का अहित नहीं अपितु हितसाधन ही होता है। स्वार्थी नेताओं द्वारा यह भ्रान्ति भी फैलाई जाती है कि हिन्दी बहुत कठिन भाषा है, जबकि वास्तविकता यह है कि किसी भी भारतवासी के लिये हिन्दी को सीखना उतना ही सरल है, जितना उनकी अपनी प्रान्तीय भाषा को सीखना। हिन्दी की लिपि देवनागरी है, जो सर्वाधिक वैज्ञानिक और स्पष्ट है। इसमें जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है और जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। इसीलिए आचार्य विनोबा भावे ने देशवासियों तथा देश के कर्णधारों को यह श्रेष्ठ सुझाव दिया था- ''भारत की एकता के लिये आवश्यक है कि देश की सभी भाषाएँ नागरी लिपि अपनाएँ।'' अदूरदर्शी और विवेकहीन सरकारों ने उनकी इस महत्त्वपूर्ण बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और देश के होनहार बच्चों के मन-मस्तिष्क पर अंग्रेजी की अनिवार्यता का बोझ लाद दिया।

देवनागरी लिपि के मुकाबले अंग्रेजी की रोमन लिपि सर्वथा अवैज्ञानिक एवं तर्कहीन है, जिसमें लिखो कुछ और पढ़ो कुछ। इसमें कोई नियम नहीं हैं कि but को बट और put को पुट क्यों पढ़ो। राजनेताओं ने वोट की राजनीति में फँसकर समूचे देश को भाषा की दृष्टि से दीन-हीन, असहाय और परमुखापेक्षी बना दिया है। स्वतन्त्रता से लेकर आज तक समूचे देश के विद्यार्थी अन्य विषयों की अपेक्षा अंग्रेजी में अधिक अनुत्तीर्ण होते रहे हैं। अब कुछ वर्षों से तो विद्यार्थियों पर अत्याचार की हद हो गई है और पहली कक्षा से लेकर उच्चशिक्षा तक सभी विषयों को पढ़ने का माध्यम भी अंग्रेजी को बना दिया। यह स्थिति अत्यधिक अस्वाभाविक और अव्यावहारिक है। लकड़ी को कुल्हाड़ी से काटना एक स्वाभाविक और सहज प्रक्रिया है न कि हथौड़े से। हमारा देश तो लकड़ी को हथौड़े से तोड़ने का दुस्साहस कर रहा है। हमारे देश की करोड़ों प्रतिभाएँ भाषा की जटिल दीवार के कारण प्रसुप्त ही रहती हैं।

दुनिया में चीन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, रूस आदि लगभग बीस देश ऐसे हैं जो अपनी-अपनी भाषाओं में राजकाज का और अध्ययन-अध्यापन का कार्य करके विकसित राष्ट्र बने हुए हैं। चीन हमसे दो वर्ष बाद स्वतन्त्र हुआ था और वह आज से २० वर्ष पहले विकसित हो चुका जबकि हम आज भी विकासशील ही बने हुए हैं। इसका मुख्य कारण अपनी भाषा की उपेक्षा करना ही है।

हमारा देश प्राचीनकाल में लाखों-करोड़ों वर्षों तक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से दुनिया का सिरमौर बनकर रहा और जगद्गुरु की पदवी पाई तथा भौतिक दृष्टि से भी समृद्धि और सम्पन्नता की दृष्टि से सोने की चिड़िया कहलाया। केवल एक संस्कृत भाषा का ही वर्चस्व रहा। अतः महर्षि मनु ने उद्घोष किया- ''**एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।**'' अर्थात् दुनिया के सभी लोग इसी देश में चरित्र की शिक्षा प्राप्त करने आते थे। महाराज अश्वपति ने नैतिकता की उच्चता को प्रदर्शित करते हुए बड़े गर्व से कहा था- ''**न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यपः। नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।**'' अर्थात् मेरे देश में कोई चोर नहीं है और न कोई कंजूस और शराबी है। यहाँ न कोई हवन न करनेवाला है और न कोई मूर्ख है तथा न कोई भी व्यभिचारी और व्यभिचारिणी है। आज हमें अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिये अपने अतीत से प्रेरणा लेनी होगी और पुनः राष्ट्र को जगद्गुरु बनाने के लिए ईमानदारी, कर्मठता, दृढ़ संकल्प, उत्साह, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वावलम्बन के साथ आगे

बढ़ना होगा और भाषा एवं संस्कृति आदि किसी भी प्रकार की पराधीनता के लबादे को उतारकर फेंकना होगा।

हिन्दी और अनेक भारतीय भाषाएँ भाषा वैज्ञानिक और साहित्यिक दृष्टि से अंग्रेजी से अधिक समृद्ध हैं और यदि अपनी भाषा विदेशी भाषा से किसी प्रकार कमतर भी हो (जो कि नहीं है) तो भी अपनी भाषा को ही महत्त्व व सम्मान देना चाहिये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था- ''**निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।**'' अनेक विदेशी विद्वानों ने भी हमें अपनी भाषा पर गर्व करने की प्रेरणा दी है। सेंट ज़ेवियर कॉलेज राँची के विभागाध्यक्ष, बाइबिल के हिन्दी अनुवादक तथा अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश के निर्माता बेल्ज़ियम के प्रसिद्ध विद्वान् फादर कामिल बुल्के ने कहा था- ''अगर मैं कुछ कर पाता तो अंग्रेजी माध्यम के सभी विद्यालयों को समाप्त कर देता। संस्कृत इस देश की भाषाओं की सास है, हिन्दी बहुरानी है और अंग्रेजी नौकरानी। हिन्दी भाषा का अपमान करनेवाला कोई बाहरी व्यक्ति नहीं है, बल्कि यहीं के लोग हैं।'' रूस के भाषा वैज्ञानिक डॉ. मे.पी. येलिशेव ने भारतीयों को प्रेरित करते हुए कहा था- ''जब तक आपके देश का कार्य और शिक्षा का प्रसार हिन्दी माध्यम से नहीं होगा, यह देश वास्तविक उन्नति नहीं कर सकता।'' अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि डब्ल्यू. बी. यीट्स ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखा था- ''भारत में अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा चलाकर ब्रिटेन ने भारत का सबसे बड़ा नुकसान किया है। उसने भव्य भारतीयों की आत्माओं में हीनता की भावना भरकर उन्हें नकलची बना दिया है।'' भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. जयन्त विष्णु नार्लीकर ने विज्ञान के अध्ययन के लिये हिन्दी माध्यम का पुरजोर समर्थन किया है- ''अगर भारत की सोई हुई प्रतिभाओं को जगाना है तो विज्ञान की शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाना होगा।''

उपर्युक्त अनेक महापुरुषों, विद्वानों, वैज्ञानिकों, भाषाविदों एवं चिन्तकों के विचारों का विश्लेषण करने के उपरान्त सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भारत के सर्वांगीण विकास के लिये भारत में अध्ययन-अध्यापन तथा राजकाजादि का समस्त कार्य भारतीय भाषाओं में करने से अत्यधिक सफलता मिल सकती है। यह संसार का नियम है जिसका मूल्य होता है सम्मान उसी को मिलता है। जब केन्द्र सरकार का कार्य हिन्दी में और प्रान्तीय सरकारों का कार्य प्रान्तीय भाषाओं में होगा तो इन्हीं भाषाओं में पढ़नेवालों को अधिकाधिक रोजगार मिलेगा, फिर स्वत: ही हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में भी बढ़ावा मिलेगा। केन्द्र का हिन्दी भाषी प्रान्तों से हिन्दी में ही सम्पर्क हो तथा अहिन्दी भाषी प्रान्तों से हिन्दी के साथ-साथ उनकी भाषा में रूपान्तर करके सम्पर्क हो। इससे किसी को असहमति भी नहीं होगी और स्वचालित यन्त्रों से अनुवाद का कार्य करने पर अधिक खर्चीला भी नहीं होगा। विदेशों से सम्पर्क अंग्रेजी में किया जा सकता है। इस कार्य के लिये कुछ अनुवादक भी भर्ती करने पड़ें तो भी कोई बड़ी बात नहीं। इस कार्य से सभी प्रान्तों का परस्पर सद्भाव और स्नेह बढ़ेगा जिससे राष्ट्र की एकता और अखण्डता भी सुदृढ़ होगी। **रोहतक (हरियाणा)**

साहित्य गौरव पुरस्कार

महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्मस्थली टंकारा के आर्य कर्मयोगी आदरणीय श्री दयालजी भाई परमार, दयालमुनि को गुजरात साहित्य अकादमी ने संस्कृत भाषा के लिए 'साहित्य गौरव पुरस्कार' प्रदान किया। श्री दयाल मुनि ने चारों वेदों के मन्त्रों को गुजराती भाषा में भाषान्तरित करके आठ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। आयुर्वेद की १८ पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं। वैदिक धर्म-संस्कृति, संस्कृत भाषा एवं आयुर्वेद के क्षेत्र में श्रेष्ठ कार्यों से आर्यसमाज के विचारों को जन-जन तक पहुँचाया है। ऐसे वरेण्य महानुभाव का सम्मान पूरे आर्यजगत् के लिये गौरव का विषय है। महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी ने दो लाख की राशि का चैक उनको अर्पण कर कृतज्ञता व्यक्त की।

ÃUeÅ·aeçÚUeè ãÅe ¥ÅõUnaeÚUeÂý·aeçàeÌ ÂéSÌ·aeõÂÚU çSaeõÅÌèÅU

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २११९७, चारों भागों का मूल्य = १३००/-
डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:- दूरभाष - 0145-2460120

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है।

-सम्पादक

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से १५ अगस्त २०२१ तक)

१. श्रीमती हेतुल सेतिया, गुरुग्राम २. आर्यसमाज मन्दिर, कुचेरा, नागौर ३. श्री राकेश भार्गव व श्रीमती ऋचा भार्गव, गुरुग्राम ४. सुश्री राशि खन्ना, अजमेर ५. मै. अजमेर फूड प्रोडक्ट्स प्रा. लि., अजमेर ६. श्री दीपक, अजमेर ७. श्री गौरीशंकर, प्रतापगढ़ ८. श्रीमती ज्योत्स्ना युद्धवीर सिंह परमार, मुम्बई ९. मै. डॉलर फाउण्डेशन, कोलकाता १०. श्री अग्निवेश व श्रीमती कंचन गहलोत, ऋषि उद्यान, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से १५ अगस्त २०२१ तक)

१. श्री विमल सचदेव, गुरुग्राम २. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट ३. श्री एस.के. कोहली, दिल्ली ४. श्री वीरचन्द जैन, बाड़मेर ५. श्री गौरीशंकर, प्रतापगढ़ ६. श्रीमती ओमलता चौहान, कोटा ७. श्री त्रिलोक सिंह चौहान, कोटा ८. श्रीमती किरण आर्य, अजमेर ९. श्रीमती सीमा खन्ना, अजमेर १०. श्री अशोक गौतम, जीन्द ११. श्रीमती दीपिका वर्मा, अजमेर १२. श्रीमती सन्तोष भटनागर, अजमेर १३. श्री अग्निवेश व श्रीमती कंचन गहलोत, ऋषि उद्यान, अजमेर १४. श्री सन्दीप माहेश्वरी, दिल्ली १५. श्री ललित आर्य, भुवनेश्वर १६. श्री दीपक, अजमेर।

अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

१. श्री सूर्यप्रकाश, विदिशा २. श्री वीरचन्द जैन, बाड़मेर ३. श्री बिहारी महावर, दौसा ४. श्री भँवरलाल, नागौर ५. श्रीमती सुनीता, कड़ैल ६. श्री पंकज कुमावत व श्रीमती खुशबू कुमावत, अजमेर ७. वेदप्रचार सेवा समिति, बलिया ८. डॉ. कृष्णा मिश्रा, अजमेर ९. आर्यसमाज, साकेत, नई दिल्ली १०. श्री दीपक शर्मा, अजमेर ११. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट १२. श्री चन्द्रसेन हरिसिंघानी, अहमदाबाद १३. श्रीमती वसुन्धरा सरकार, गुरुग्राम १४. श्री जगरूप सिंह, गुरुग्राम १५. श्री जयदेव, गुरुग्राम १६. श्री अजय कुमार शर्मा, गुरुग्राम १७. श्री मनोज बजाज, गुरुग्राम १८. श्री अरुण देव बजाज, गुरुग्राम १९. श्री धर्मवीर, गुरुग्राम २०. श्री रोशनलाल ठक्कर, गुरुग्राम २१. श्रीमती राजबाला यादव, गुरुग्राम २२. श्री सचिन गुप्ता, गुरुग्राम २३. श्री सुधीर नागपाल, गुरुग्राम २४. श्री ललित कुमार, गुरुग्राम २५. श्री हृदयेश कुमार, गुरुग्राम २६. श्री नरेन्द्र यादव, गुरुग्राम २७. श्री दिनेश नागपाल, गुरुग्राम २८. श्री ओ.पी. मनचन्दा, गुरुग्राम २९. श्रीमती लक्ष्मी आहूजा, गुरुग्राम ३०. श्री विनय सिमोर, गुरुग्राम ३१. डॉ. सुभाष कुमार, गुरुग्राम ३२. श्रीमती शोभना रस्तोगी, गुरुग्राम ३३. श्री जी.एन. गोसाईं, गुरुग्राम ३४. श्री के.के. बजाज, गुरुग्राम ३५. श्री प्रतीक कालड़ा, गुरुग्राम ३६. आर्यसमाज बसई, गुरुग्राम ३७. श्री नरेन्द्र देव, गुरुग्राम ३८. श्री आत्मप्रकाश तनेजा, गुरुग्राम ३९. श्री मोहित मेहता, गुरुग्राम ४०. श्री मनोज सैनी, गुरुग्राम ४१. श्री अनिल वर्मा, गुरुग्राम ४२. श्रीमती सुषमा मेहता, गुरुग्राम ४३. श्री दिनेश बजाज, गुरुग्राम ४४. श्री राजेश आर्य, गुरुग्राम।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४